श्रीः ।

साधु निश्चलदासकृत

युक्तिप्रकाश.

शोधनकर्ता

ढुण्ढिराजात्मज विठ्ठलशास्त्री.

मुम्बई.

"गुजराती" प्रिंटिंग प्रेस.

संवत् १९५६ इ. स. १८९९

मूल्य रु. १.

प्रस्तावना.

आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।

सब विद्वज्जनोंको विदित है कि, इस भरतभूमिमें वेदांत, न्याय, व्याकरण, सांख्य, मीमांसा, पातंजल वगैरह अनेक शास्त्र प्रचलित और लोकसम्मत हैं. परंतु इनमें सर्वकाल सब लोगोंका समाधान करनेके वास्ते वेदांतशास्त्र ही समर्थ है. क्योंकि यह वेदांत शास्त्र (उपनिषद्भाग) सब वेदोंका सार है. और निर्गुण ब्रह्मज्ञानका देनेवाला है, इस वेदांत शास्त्रको जाननेके वास्ते जैसा अधिकारी योग्य है, तिसका लक्षण **वेदांतसार**में कहा है कि–

"विधिवदधीतवेदवेदाङ्गत्वेनापाततोऽधिगताऽखिलवेदार्थोऽस्मिञ्जन्मनि जन्मान्तरे वा काम्यनिषिद्धवर्जनपुरःसरं नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तोपासनानुष्ठानेन निर्गतनिखिलकल्मषतया नितान्तनिर्मलस्वान्तः साधनचतुष्टय सम्पन्नः प्रमाताऽधिकारी" यथाशास्त्र अध्ययन किया है वेद (ऋग्, यजु, साम और अथर्व) का और वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छंद, ज्योतिष और निरुक्त)का जिसने; अतएव यथार्थ प्राप्त है सर्व वेदका अर्थ इस जन्ममें अथवा अन्य जन्ममें जिसको; और काम्य

और निषिद्ध कर्मोंके त्यागपुरःसर नित्य (जो कर्म न करनेसे प्रायश्चित्त करना पडता है ऐसा अर्थात् संध्यावंदनादिक), नैमित्तिक (पुत्र होनेसे जो इष्टि करनेकों पडती है वह जातेष्ट्यादिक), प्रायश्चित्त (कुछ दोष होनेसे तन्निराकरणार्थ जो कृच्छ्रचांद्रायणादिक), उपासना (शालिग्रामादिकोंकी पूजा) इन्होंका अनुष्ठान करनेसे गया जो संपूर्ण पाप तिससे अत्यंत निर्मल हुआ है अंतःकरण जिसका और साधनचतुष्टय (नित्य अनित्य वस्तुका विचार, इस लोकमें और पर लोकमें भोगादिकोंके विषे वैराग्य, शम–दम-उपरति–तितिक्षा–समाधान–श्रद्धा, और मोक्षविषे इच्छा) से युक्त प्रमाता (प्रमाण करनेवाला) ऐसा जीव अधिकारी है. इस प्रकार अधिकारी जो जीव तिसने वेदांत शास्त्र, श्रवण करनेके वास्ते गुरुके पास जाना. इसविषे श्रुतिनेभी कहा है कि, “ **तद्विज्ञानार्थं सगुरमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्** ” तिस वेदांतका आनुभविक ज्ञान होनेके वास्ते हाथमें समिध लेकर श्रोत्रिय (वेदको जाननेवाला) और ब्रह्ममें जिसकी निष्ठा है ऐसे गुरुके पास जाना.

जीवन्मुक्त आचार्य,साधु आदिकोंने इस वेदांत विषयके अनेक ग्रंथ रचे हैं. तिनमें साधु श्री **निश्चलदास**नेंभी (कलियुगमें ऐसे गुरुशिष्योंका अभाव है) ऐसा जानकर **युक्तिप्रकाश**, **विचारसागर** और **वृत्तिप्रभाकर** आदि अनेक ग्रंथ निर्मित किये हैं. अनुमानसे ऐसा जानाजाता है कि, यह युक्तिप्रकाश ग्रंथ निश्चलदासजीनें प्रथम अवस्थामें किया होगा, और विचारसागर मध्यम अवस्थामें. और वृत्तिप्रभाकर यह न्यायशास्त्रविषयक सर्वलोकसंमत ग्रंथ उत्तरावस्थामें किया होगा.

विचार करनेसे ऐसा मालूम होता है कि, वेदांतशास्त्रके सब ग्रंथ संस्कृत भाषामें हैं और उनमें अतीव काठिन्य होनेसे प्रथम प्रवेश होना दुस्साध्य है ऐसा विचार करके सामान्यलोगोंको आत्म ज्ञान होनेके वास्ते साधु निश्चलदासजीने प्रथम यह युक्तिप्रकाश नामक ग्रंथ हिंदी भाषामें किया. इसमें दृष्टांतपर एक युक्ति कहकर पुनः दार्ष्टांत कहा है. उदाहरणार्थ इनमेंसे कितनी एक युक्तियोंका यहांपर दिग्दर्शन करता हूं. जैसे–चार स्त्रियोंके दृष्टांतसे यथार्थ ज्ञानकी युक्ति, जीवन्मुक्त और विदेहमुक्तके निर्णयकी युक्ति, सनकादिकोंके जन्मादिके निर्णयकी युक्ति, सनकादिकोंकी ब्रह्माकार वृत्तिके निर्णयकी युक्ति, विराटके निर्णयकी युक्ति, वैराग्यकी युक्ति, सच्चिदानंद आत्माके निर्णयकी युक्ति, आत्मानंदके निर्णयकी युक्ति, ज्ञानस्वरूप प्राप्तिकी युक्ति, श्रवणसे ज्ञान होनेकी युक्ति, ईश्वरके निर्णयकी युक्ति. मोक्षप्राप्तिके निर्णयकी युक्ति इत्यादिक ३९ युक्तियोंकरके इस ग्रंथमें यथार्थ तत्वज्ञान कहा है.

आजतक ऐसा सरल और सुबोध ग्रंथ किसीनेभी प्रकाशित नहीं किया. यह न्यूनता देखकर गुजरातीयंत्रालयाधिपतिने इस "युक्तिप्रकाश" ग्रंथके छापनेका विचार किया और एकप्रति सूरतनिवासी संकृत पुस्तकोंका संग्रह करके गव्हर्नमेंटको अर्पण करनेवाले **भगवानदास केवलदासजी** इनके पाससे मँगाई. और एक जीर्ण प्रति (हमारे) पास थी और एक प्रति हमारे एक परममित्रने काशीसे लाकर दी थी. ऐसे तीन ग्रंथ मिलाकर इस ग्रंथको बडे परिश्रमसे विद्वज्जनसेवक पालगडग्रामनिवासी शास्त्री धुण्डिराजात्मज **विट्ठलशर्मा**ने शुद्ध किया है. यह ग्रंथ मुमुक्षु और वेदांतजिज्ञासुओंको अतीव उपयोगी है. गुणग्राही जन इस

अपूर्व ग्रंथका संग्रह करनेमें विलंब नहीं करेंगे ऐसी आशा रखकर **गुर्जरयंत्रालयाधिपति**ने यह ग्रंथ जनसमूहके हितार्थ स्वकीय यंत्रालयमें छापके प्रसिद्ध किया है. इसमें कदाचित् दृष्टिदोषसे अथवा सीसकाक्षरोंके भंगसे किसीस्थलपर अशुद्धि रही हो उसे सुज्ञजन सदय हृदय होकर क्षमा करें, इति शम्.

विक्रमार्क सं० १९५६ कार्तिकशुक्ल १

श्री ।

साधुनिश्चलदासजीका जीवनचरित्र ।

दोहा–सूरतसे कीरत बडी, बिना पंख उड़ जाय ॥
सूरत तो जाती रहे, कीरत कभी न जाय ॥ १ ॥

महापुरुषोंका जीवनचरित्र संसारसमुद्रसे पार जानेके वास्ते नौकारूप है. क्योंकी पुण्यचरित्र महाजनोंका जीवनचरित्र सुननेसे प्रथम तो तिन महापुरुषोंके सदृश आचरण करनेकी सामान्य जनोंकीभी इच्छा होती है. फिर तादृश आचरण करनेसे जन्म मरणरूप संसारसमुद्रसे पार होकर आनंदमें लीन होते हैं. इसवास्ते महापुरुषोंके जीवनचरित्रकी अत्यावश्यकता युक्तिसिद्ध है.

इन युक्तिप्रकाश, विचारसागर और वृत्तिप्रभाकर तथा एतादृश अन्य अनेक ग्रंथोंके कर्ता वेदांतादिशास्त्रपारंगत श्रीनिश्चलदासजी हैं. इन निश्चलदासजीने पंजाबदेशमें धणाना नामक ग्राममें विक्रमसंवत् १८४९ श्रावणकृष्ण ८ (श्रीकृष्ण जन्माष्टमी) जैसी पुण्य तिथिमें जाट जातिमें अवतार धारण किया था. इनके पिताका नाम मुक्तजी था. इनका गृह अठारह विध्धे दारिद्र्यसे भरा हुवाथा. मुक्तजी स्वग्राममें आपका उदरनिर्वाह न होनेसे विद्वत्प्रसूतिनी पत्नीके निधनानन्तर निश्चलदासजीको स्वस्कंधउपर लेकर उदरभरणार्थ घूमते घूमते दिल्लीमें आये जहां **दादूपंथिओंका** स्थान है. उससमय उस स्थानके अधिकारी **अमरदासजी** नामक प्रसिद्ध महा-

त्मा थे; तिनके चरणोंकी शरण जाकर, निश्चलदासकों वहां ही रखकर साधूंको दीक्षा देनेके वास्ते प्रार्थना की. फेर गुरु **अमरदासजीने** दीक्षा दी. निश्चलदासजीने वहांही विद्याभ्यासका आरंभ किया. और चौदह बरसकी वयपर्यंत गुरुगृहमें विद्याभ्यास और गुरुसेवा करते रहे.

निश्चलदासजीकी विद्यासंपादन करनेकी अभिरुचि देखके दूरदर्शी पुरुष ऐसा अनुमान करने लगे कि, यह निश्चलदासजी विद्यासागर हो जायँगे इसमें कुछ संदेह नहीं. सो परमेश्वरकी कृपासे उन महाशयोंका अनुमान पूर्णतया सत्य होगया.

इससमय निश्चलदासका स्वग्राम (धणाना) वासी **स्वरूपानंद** नामक परमहंसके साथ दिल्लीमेंही समागम भया. और परस्पर दोनोंकी जलदुग्धवत् मित्रता भई. दिल्लीमें अधिक विद्याभ्यासकी अनुकूलता न होनेसे इन दोनोंने संकल्प किया कि, विद्याका आदिपीठ जो काशीक्षेत्र तहां न जानेसे यथेच्छ प्राप्ति दुर्लभ है; ऐसा विचार करके वह दोनों भद्र पुरुष काशीको गये. जहां त्रिभुवनपावनी पापसंहारिणी स्वर्गंगा (भागीरथी) वहती है, जहां साक्षात् श्रीविश्वनाथजी वास करते हैं, जहां अनेक ब्रह्मनिष्ठ जिवन्मुक्त साधु परार्थ चंदनवत् शरीरको प्रारब्ध भोग भोगाकर मनको सदां ब्रह्मानंदमें निमग्न कर रहे हैं.

काशीमें आगमनके अनंतर निश्चलदासको ज्ञात हुआ कि, यहांके अविद्वान्के साथभी बाहरके विद्वानकी तुल्यता होना बहुत कठिन है. सद्बुद्धिवानोंको स्वकीय न्यूनताका भान होना उदयका सोपानरूप है. निश्चलदासजी प्रथम निखिल शास्त्र निष्णात **श्रीविशुद्धानंदजीके** आश्रममें

शास्त्र श्रवण करनेके वास्ते जाने लगे. तहां सज्जन विद्वानोंके परिचयसे मालूम हुआ कि हमारेमें अद्यापि शास्त्र श्रवण करनेका भी अधिकार हुआ नहीं, तो अध्ययन करनेका कहांसे होवे? ऐसा विचार कर **आत्मपुराणपर** टीका करनेवाले पण्डितवर्य **काकारामजी**के पास प्रारंभसे अध्ययन करने लगे. निश्चलदासजीमें उत्साह और निश्चय यह गुण अलौकिक थे. निश्चलदासजीने प्रथम काकारामजीके शिष्यके पास कोश व्याकरणादि ग्रंथोंका अध्ययन किया. निश्चलदासजीमें असाधारण धारणाशक्ति देखकर काकारामजीने भी निश्चलदासजीको उत्तेजन दिया. काकारामजीके पास बहुत शिष्य थे और इनके यहां षट् शास्त्रोंका अभ्यास चलता था. तब यह निश्चलदासजी सब शास्त्रोंका पाठ सुननेके वास्ते बैठते थे. ऐसे करते करते गुरुकी कृपासे निश्चलदासजी सर्वशास्त्रपारंगत भये. निश्चलदासजीनें न्यायशास्त्रका अभ्यास विद्वद्वर्य **दामोदर** शास्त्रीके पास किया था.

एक लोकवार्ता ऐसी है कि, किसी दिन कितने एक पंडितोंकी एकस्थानपर सभा भयी, वहां अनेक प्रकारका संवाद हुवा. इसमें ऐसा कठिन प्रसंग आगया कि, उसका एक समाधान करनेके वास्ते वहांपर एकत्रित विद्वन्मण्डलीमें कोईभी समर्थ नही हुआ, तब निश्चलदासजीनें सब सभासदोंकी नम्रतापूर्वक आज्ञा लेकर शास्त्रसंमत समाधान किया वह सुनकर सब लोग आश्चर्यचकित होगये. इस प्रकार काकारामजीके शिष्य निश्चलदासजीकी विद्वत्ता देखकर सब लोगोंने काकारामजीकी बहुत स्तुति की. और ऐसे शिष्य करके काकारामजीकी कीर्ति चंद्रिकाप्रकाशवत् विस्तृत भई.

उसीसमय वेदांतशास्त्रपारंगत श्रीमद्रामभक्त **तुलसीदासजी**भी काशीमें रहतेथे; वहां वेदांतशास्त्रकी प्रतिदिन चर्चा चलती थी. कोई एक उपरोक्त सदृश प्रसंग आया, तिससमय निश्चलदासजीने श्रीतुलसीदासजीकी आज्ञा लेकर सब लोगोंका समाधान किया. वह सुन सर्वजन अतीव प्रसन्न हुये,

महाभाग्यशाली निश्चलदासजीकी विद्यासंपादन करनेकी यह जो अतीव इच्छा थी वह काशीमें भगवदनुग्रहसे परिपूर्ण हुई. विद्वान् साधुओंका समागम होना यह सद्भाग्यका प्रत्यक्ष आदर्श है.

निश्चलदासजीने काशीमें बहुत दिन वास कर विद्यारूप संपत्तिसे परिपूर्ण होकर सब देशोंमें फिरनेका विचार किया. और काशीस्थ गुरुवर्य काकारामजी और तत्रस्थ सर्व विद्वत्समूहका आशीर्वाद लेकर, जिस प्रकार वृक्ष शीत, उष्ण, पर्जन्य इत्यादिक सहन करके छाया—पत्र—पुष्प—फलादिकोंसे लोगोंपर उपकार करते हैं, तिसीप्रकार लोगोंको अज्ञानसमुद्रमेंसे उद्धृत करनेके लिये उपदेश करते घूमने लगे.

जिस प्रकार निश्चलदासकी ज्ञान ग्रहण करनेकी अप्रतिम शक्ति थी तद्वत् ज्ञानदान करनेकी भी अप्रतिम शक्ति थी. निश्चलदासने षट् शास्त्रोंका अध्ययन किया था, परंतु परमपुरुषार्थप्रापक वेदांत शास्त्र है ऐसा निश्चय होनेसे तिस शास्त्रपर उनकी गाढ प्रीति थी. वह प्रतिदिन प्रातः कालमें वेदांतशास्त्रका पाठ करते थे.

निश्चलदासजी घूमते घूमते फेर दिल्लीमें गुरुके मठमें आय पहुंचे और वहां लोगोंको वेदांत सुनाने लगे. वहांके लोगोंमें ग्राहकशक्ति न

होनेसे तिसविषयपर उनकी अभिरुचि नहीं भई. परंतु गुरुनाम और गुरुस्थानपर निश्चलदासजीकी बहुत प्रीति थी, इसवास्ते दादूपंथी साधुओंके उत्कर्षकी इच्छासे उन लोगोंमें ज्ञानका प्रसार करनेका प्रयत्न करने लगे. निश्चलदास और सुंदरविलासका कर्ता सुंदरदास इन दो महापुरुषोंने दादूपंथके महिमाकी वृद्धि की है.

निश्चलदासजीके शिष्यवर्गमें अनेक पंथके साधु थे. कोई एक दिन निश्चलदासजीके शिष्यवर्गमें कलह हुवा. तब किसी विद्यार्थीने दादूपंथी विद्यार्थीको कहा कि, तुम्हारा गुरु कुक्कुटवत् था. यह बात दादूपंथियोंको असह्य हुई. और विद्यार्थीने तत्काल निश्चलदासजीके पास जाकर यह बात कही. तब निश्चलदासजीने हास्यपूर्वक कहा कि, भाई! यह जो कहता है वही सत्य है. कारण जैसे कुक्कुट सब लोगोंको निद्रामेंसे जगाता है उसीप्रकार श्रीदादूजीने अनेक अज्ञानी लोगोंको मोहनिद्रासे जगाया है इसवास्ते उसने कुकुटवत् यह पद अन्वर्थकही कहा है.

निश्चलदासजीकी विद्वत्ता और उपदेश करनेकी शक्ति अप्रतिम होनेसे सर्व जगतमें प्रसिद्धि भई. और बूंदीके राजा **रामसिंह**ने साधु निश्चलदासके समागमकी इच्छा की और निश्चलदासजीको राजमहलमें बुलाया. तिस रामसिंहका भक्तिभाव देखकर निश्चलदासजी बूंदीमें आगये. फेरसाधूके समागमसे रामसिंहजीका भक्तिभाव वृद्धिंगत हुआ. और सब राजकुटुंब निश्चलदासविषे गुरुभाव रखकर उनकी आज्ञानुसार वर्तने लगा. और निश्चलदासके कथनानुसार रामसिंहनें सत्कार्य किया.

विद्वानोंके दर्शन, श्रवण और समागमसे अनेक प्रकारका कल्याण होता है, इसविषे रामसिंहका दृष्टांत प्रत्यक्ष है. किसी समय निश्चलदासकी सूचनासे तिस राजानें अनेक विद्वानोंको बूंदीमें बुलाया और उनका अच्छे प्रकार आदरसत्कार किया. उससमय सब विद्वानोंने राजाकी विद्वत्ता देख राजाकोभी योग्य उपपद दिया.

राजा रामसिंह और कितनेक शिष्योंकी प्रार्थनासे निश्चलदासजीनें सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ रचनेका आरंभ किया. निश्चलदासजीके विद्याका पठन पाठनसे अच्छा परिपाक होनेसे उन्होंने जो जो ग्रंथ किये सो सो ग्रंथ तत्काल लोकमान्य और सर्वोपयोगी हुये.

निश्चलदासजीनें युक्तिप्रकाश, विचारसागर, वृत्तिप्रभाकर, 'कठवल्ली' उपनिषद्पर संस्कृत भाषामें व्याख्यान और वैद्यशास्त्रका एक ग्रंथ ऐसे मुख्य ग्रंथ निर्माण किये हैं और निश्चलदासजीनें २७ लक्ष संस्कृत श्लोकोंका संग्रह किया है, और वह संग्रह कीहडोली ग्राममें निश्चलदासका जहां ' गुरुद्वारा 'वास है वहां है ऐसा लोकवार्तासे जाना जाता है.

निश्चलदासजीका वक्तृत्वभी अत्युत्तम था. जब योगवासिष्ठादि ग्रंथो वे सुनाते थे तब अनेक श्रोताओंकी भीड मचतीथी. और संसार-संतापसे संतप्त हुए श्रोता लोग निश्चलदासके वचनामृतसे शांत होकर ब्रह्मानंदको प्राप्त होते थे.

निश्चलदासजीको देखनेवाले लोकोंके मुखसे कर्णोपकर्ण ऐसा सुना जाता है कि, निश्चलदासजीका शरीर कृश था, पंच केश धारण किये थे, मुखका आकार लंब व गोल था, शरीरमें ज्वरकी पीड़ा थी, राजा

ैर रंक, विद्वान और मूर्ख सबको समदृष्टिसे देखते थे. इनके पास
्त शिष्य थे परंतु अपना सब कार्य स्वहस्तसे करते थे. और इनका
काल ग्रंथावलोकनमें जता था.

इसप्रकार प्रारब्धभोग भोगकर निश्चलदासजीका आत्मा दिल्लीमें गुरु-
श्रममें विक्रम संवत् १९१९–२० श्रावण कृष्ण ३० मध्यान्होत्तर
पके उमरके ७० वर्षमें जीर्ण वस्त्रवत् देहका त्याग करके ब्रह्ममें लीन हुआ.[1]

1 यह जीवनचरित्र रा. रा. मनःसुखराम सूर्यराम त्रिपाठीके विचारसागर-
मेंसे लिया है.

युक्तिप्रकाशानुक्रमणिका.

गुरुसर खुड्डा जिला होशयारपुर

॥ श्री ॥

अथ साधुनिश्चलदासकृत-

युक्तिप्रकाशप्रारंभः।

अणोरणीयान् महतो महीयानात्मा
गुहायां निहितोऽस्य जंतोः।

श्रुतिस्मृतिपुराणैर्यद्गीयते ब्रह्म निर्मलम् ॥
मुमुक्षूणां हितार्थाय तद्युक्त्यात्र प्रकाश्यते ॥ १ ॥

अर्थः-वेद (उपनिषदादिक), मनु आदिक स्मृति, भारत भागवत आदि पुराण, इन्हों करके जिसका नित्य गान किया जाता है तिस ब्रह्मकूं संसारबंधसे मुक्त होनेकी इच्छा करनेवाले लोकोंके हितके अर्थ (मैं निश्चलदास) इस ग्रंथमें युक्तिसे प्रकाशित करता हूं अर्थात् कहता हूं.

चार स्त्रियोंके दृष्टांतसे यथार्थ ज्ञान प्राप्त होनेकी प्रथम युक्ति।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ युक्तिप्रकाशो लिख्यते । अब चार स्त्रियोंके दृष्टांतसे यथार्थ ज्ञान प्राप्त होनेकी प्रथम युक्ति कहताहूं. इसमें प्रथम दृष्टांत कहते हैं। कोइ एक पुरुष द्रव्यकी इच्छासे घरसे निकल कर वनमें गया, और वहां एक पुरुष बैठा है ऐसा देखा. तब उस पुरुषके पास जाकर इसने प्रार्थना करी कि, हे प्रभु! मेरे उपर ऐसी कृपा करो कि, मोकूं बहुत द्रव्य प्राप्त होवे. तब उस पुरुषने उसको एक कुदाल और एक खड्ग दिया, और पास एक मंदिर बताकर कहा कि, तू इस मंदिरमें जा, तुझको द्रव्य प्राप्त होवेगा. वह पुरुष उस मंदिरमें गया, और देखने लगा, तो चार स्त्रियां खडी हैं ऐसा देखा. उनको पुरुषने पूंछा कि, तुम कौन हो? किस कुलकी हो? नाम क्या? तब स्त्रीयोंने कहा कि, हम स्त्रियां हैं, हम ब्राह्मण कुलकी हैं, और जो नाम था सो बताया. फिर पुरुषनें पूंछा तुम कहां रहती हो? तब

एक स्त्रीनें कहा मैं अग्निशालामें रहती हूं. दूसरीने कहा मैं द्वारमें रहती हूं. तीसरीनें कहा मैं धर्मशालामें रहती हूं. चोथीनें कहा मैं अंतःपुरमें रहती हूं. इतना कहकर स्त्रियां गुप्त हो गईं. और चार पुरुष निकल आये. फेर उनको पूछा कि, तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है? तुम किस कुलमें उत्पन्न हुए हो? तब उन्होंने कहा कि हम पुरुष हैं, क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न हुए हैं, और हमारा अमुक अमुक नाम है. तब फेर पूंछा तुम कहां रहते हो? तब एकने कहा मैं अग्निशालामें रहता हूं. तब पुरुषनें पूंछा अग्निशालामें अमुक नामकी स्त्री रहती है ? उसने कहा कि वह मेरी स्त्री है. उस्का वहां काम क्या है. और जो वहां उसको रहनेका है तो दासी होकर रहे. दूसरेकूं पूंछा तूं कहां रहता है ? उसने कहा मैं द्वारमें रहता हूं. तब पुरुषनें पूंछा वहां तो अमुक स्त्री है ? उसने कहा वह मेरी स्त्री है. उस्का वहां काम क्या है, और जो वहां उसको रहनेका है तो दासी होकर रहे. तीसरेकूं पूंछा तूं कहां रहता है ? उसनें कहा मैं धर्मशालामें रहता हूं.

तब पुरुषनें पूंछा वहां कोई अमुक स्त्री रहती है ? उसने कहा वह मेरी स्त्री है. जहां मैं रहता हूं तहां उसका काम क्या है. और जो वहां रहनेका है तो दासी होकर रहे. चौथेकूं पूंछा तूं कहां रहता है ? उसने कहा मैं अंतःपुरमें रहता हूं. तब पुरुषने पूंछा कि, वहां तो अमुक स्त्री रहती है ? उसने कहा कि, वह मेरी स्त्री है. उस्का वहां काम क्या है और जो वहां उसको रहनेका है तो दासी होकर रहे. तब पुरुषने वह सब सुनकर कहा कि, तुमने बडा अनर्थ किया है. क्षत्रिय होकर ब्राह्मणियोंको घरमें गेरी, तुमको दंड देना योग्य है. इतना कह पुरुषनें खड्ग निकालकर पृथक् पृथक् चारोंके शिर छेदन किये. तब फिर चारों स्त्रियां प्रकट हुई. और कहने लगीं कि, ये हमारे पुरुष हैं; हम सती होवेंगी, जब ये स्त्रियां आपके पतिके साथ जलनेको तयार हुई, तब अंतःपुरमें जो स्त्री रहती थी सो पुरुषने रख लीनी, और कहा कि तू मेरे पास रहा कर. और फेर तीनों स्त्रियोंको चारों पुरुषों

सहित दाह किया.फेर वह पुरुष स्त्रीको साथ लेकर कुदालसे खोदने लगा.प्रथम द्वार खोदा, फेर अग्निशाला खोदी, फेर धर्मशाला खोदी,फेर अंतःपुरमें गया तो क्या देखता है कि, एक शिला लग रही है;जब उस शिलाको कुदाली मारी तब उसमेंसे एक पुरुष निकला,और निकल कर उस पुरुषविषे लय (लीन) होता भया. फेर उसका लय होते ही वह स्त्री बुड्ढि होगई. वह स्त्री बुड्ढि होतेही पुरुषकी द्रव्यकी इच्छा जाती रही और उसी स्थानमें बैठ रहा. फेर और चार स्त्रियां निकलीं. उन चार स्त्रियोंको अपने पास रखलिया, और उनके संग विलास करने लगा. और बुड्ढि स्त्री टहल करने लगा. खड्ग और कुदाल जिस्के पास है उस पुरुषको आरक्त कहते हैं. यह दृष्टांत हुआ. अब **दार्ष्टांत** कहते हैं. पुरुष कौन है कि मुमुक्षु है, द्रव्यकी इच्छा क्या कि अपने स्वरूपकी प्राप्ति, सो मुमुक्षु पुरुष वर्णरूपीगृहको त्यागके आश्रम स्थानीबनमें गया. और जो पुरुष मिला सो कौन,

सो सद्गुरु है. द्रव्यके प्राप्तिकी इच्छा क्या है कि,हे प्रभु ! मुझे स्वरूपकी प्राप्ति हो. गुरुने जो कुदाल और खड्ग दिया सो क्या है,कि विचाररूपी कुदाल और वैराग्यरूपी खड्ग.मंदिर बताया सो देह,और कहा कि इस्में तू प्रवेश कर, तुझे द्रव्यस्थानी (आत्मस्वरूप) की प्राप्ती होगी. इसने जो संघातरूप मंदिरमें प्रवेश किया, तो अंतर-दृष्टिसे चार स्त्रियां देखीं. और चारोंसे पूंछा कि तुम कौन हो? कुल क्या है? नाम क्या है ? रहती कहां हो? सो इन्होंनें कहा, हम उत्तम कुलकी ब्राह्मणी हैं. एक स्त्रीनें कहा कि मेरा नाम लज्जा है, अग्निशाला (नेत्र)में

---

१ पंचमहाभूतोंके पंचीकरणसे अर्थात् पृथ्वी,आप, तेज, वायु और आ-काश इन्होंके प्रथम दो दो आठ आठ आनेके भाग करना. और एक (आठ आनेके) भागके ४ चार भाग करना (वह दोदो आनेके हुए) फेर जिस भूतका आठ आनेका भाग है तिसमें दो आनेका भाग न मिलाके दूसरे चार भूतोंके आठ आनेके भागमें मिला देना. जैसे पृथ्वीके आठ आनेके भागमें पृथ्वीका दो आनेका भाग न मिलाके, आप तेज वायु और आकाश इन्होंके आठ आनेके भागमें मिला देना. ऐसा सब भूतोंका मिश्रण करनेसे जो शरीर होता है सो.

रहती हूं प्रत्यक्ष दीखै है. दूसरीनें कहा कि मैं द्वार (मुख) में रहती हूं, और मेरा नाम दया है. तीसरीने कहा मैं धर्मशाला (हृदय) में रहती हूं, और मेरा नाम कीर्ति है.चौथीने कहा मैं अंतःपुर (अंतःकरण) में रहती हूं. उत्तम कुलकी क्यों कहा कि बडे पुण्यों-करके होतीं हैं यह कहके चारों स्त्रियां गुप्त हो गई.

फेर चार पुरुष प्रगट हुए. एक पुरुषसे पूछा कि, तू कौन है? तेरा नाम क्या है?उस पुरुषने कहा कि,मैं क्षत्री हूं, मेरा नाम काम है, अग्निशाला (नेत्र) में रहता हूं. पुरुषने पूछा कि नेत्रमें तो लज्जा रहती है? उसने कहा जहां मैं तहां लज्जा कैसी रहेगी? अर्थात् नहीं. उसका प्रमाण क्या कि, जिससमय इंद्र कामकरके व्याकुल हुआ तब गौतम ऋषि पूजनीय थे तोभी तिनके स्त्रीके अर्थ लज्जाका त्याग कर तिनके गृहमें गया.तो कामसे क्या फल हुआ कि देहमें सहस्रभग हुई.

इस प्रकार दूसरे पुरुषको पूछा कि तू कौन है? कहां रहता है?नाम क्या है? उसने कहा मेरा नाम क्रोध है,

द्वार (मुख) में रहता हूं. उस पुरुषनें पूछा वहां दया रहती है ? फेर उसनें कहा कि, जहां मैं तहां दया कैसी रहेगी? अर्थात् नहीं. उसका प्रमाण क्या है कि परशुरामजी भीष्म पितामहको पूजापात्र थे, तोभी जिस समय क्रोध आया तब दया न रही, और परशुरामके सन्मुख युद्ध किया. एक क्षत्री भीष्म पितामह रहाथा तिसने परशुरामको नीचा दिखाया. इस प्रकार वैराग्यवान् पुरुषको भी जो कोई जगतका विषय रह जावे तो सो विषय दुःखदाई होता है.

फेर तीसरेकूं पूछा कि, तू कौन है ? कहां रहता है ? नाम क्या है? तब उसने कहा कि, मेरा नाम लोभ है, मैं क्षत्रिय कुलका हूं, धर्मशाला (हृदय) में रहता हूं. तब पुरुषने पूंछा ?वहां कीर्ति रहती है? उसने कहां कि, जहां मैं तहां कीर्ति कैसी रहेगी? अर्थात् नहीं. उसका प्रमाण है सो कहते हैं. शृंगी ऋषिने जिस समय लोभ किया तब तपकी कीर्ति जाती रही.

फेर चौथेकूं पूछा कि, तू कौन है? क्या नाम है? तब उसने कहा मेरा नाम मोह है, मैं अंतःपुर(अंतकरण) में

रहताहूं.तब पुरुषने पूछा कि,अंतःकरणमें धृति रहती है? उसने कहा जहां मैं तहां धृति कैसी रहेगी?अर्थात् नहीं रहेगी. धृति नाम धैर्यका है. इसका प्रमाण गीतामें कहा है कि, जिस समय अर्जुनको अपना परिवार देखके मोह हुआ तब धैर्य न रहा.

कोई ऐसी आशंका करे कि यह कामादिक क्षत्री कैसे हैं?तिस पर गीताका प्रमाण है ॥ **काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः** ॥ इसका अर्थ ऐसा है यह काम और यह क्रोध रजोगुणसे उत्पन्न हुए हैं. यह वार्ता सुनकर पुरुषने वैराग्यरूपी खड्ग खैंचकर विचार किया कि, वैराग्यवानको काम कैसा! ऐसे विचारद्वारा कामको निषेध किया. जैसे शिवजीने नेत्रसे अग्नि उत्पन्न करके कामको भस्म करदिया. जब कामको निषेध किया तब फेर विचार किया कि, वैराग्यवानको क्रोध कैसा? फेर विचारद्वारा क्रोधकोभी निषेध किया. जैसे विष्णुको भृगुजीने लात मारी, फेरभी विष्णुनें

भृगुजीका चरण पकड लिया, और कहा कि, महाराज! आपके चरण कोमल हैं और मेरा हृदय कठोर है आपके चरणको दुःख हुआ होगा. जब क्रोधका निषेध किया, तब फेर विचार किया कि वैराग्यवानको लोभ कैसा ? फेर लोभकाभी निषेध किया. जैसे नचिकेताने लोभका त्याकर, आपका पिता उद्दालक लोभसे आपके (नचिकेतके) वास्ते तरुण गाई रखकर ब्राह्मणोंको वृद्ध गाई दान करता था तिसका निषेध किया और आप यमराजको दान हुवा. और यमराजके पाससे भी तीन वर पाकर पिताकूंभी लोभसे छुडाया. फेर इसही प्रकार मोहका निषेध किया.

जब मुमुक्षुनें कामादिक चारोंका निषेध किया तब स्त्रीस्थानापन्न लज्जा, दया, कीर्ति और धृति प्रगट हुई फेर इस पुरुषने विचार किया कि,वैराग्यवानको लज्जा कैसी? कारण लज्जाभी प्रतिबंधक होती है.देखो, लज्जासे गोपियोंका कैसा हाल हुआ! जैसे गोपियां लज्जा करके कृष्ण भगवानपैं नहीं गई.कुब्जाने लज्जाका त्याग किया

इसवास्ते श्रीकृष्णको प्राप्त होकर सुख भोगा. फेर विचार किया कि,वैराग्यवानको दया कैसी? और दया करे तो जैसा जडभरतको मृगबालकपर दया करनेसे मृगशरीर लेनेको पडा और जैसी दशा हुई, तैसी दशा होगी और विश्वावसु नामक गंधर्वराजाकी कन्या मदालसाने दयाका त्याग कर सुख भोगा. फेर विचार किया कि, वैराग्यवानको कीर्ति कैसी? और जो कीर्ति चाहे तो दुर्योधनकी जैसी दशा हुई; श्रीभगवाननें दुर्योधनकूं कहा कि, पांच ग्राम पांडवनको दे तब उसने न माना और कहा मैं ऐसा महान् राजा कैसे मानूं? तो न माननेसे शिरभी न रहा. और कीर्तिका त्याग करके कदर्यने सुख भोगा. फेर धैर्यरूपी स्त्रीको धारण किया, जैसे ध्रुवजी और शिशुपाल धैर्यको धारण कर आत्मस्वरुपको प्राप्त हुए.

फेर उस पुरुषने धृति (धैर्य) को धारण करके विचाररूपी कुदाल लेकर संघातरूपी मंदिर ढाहने लगा. प्रथम जो दृश्य है सो जड है, अनित्य है, ऐसा विचार

करके द्वारस्थानी स्थूलशरीरका निषेध किया;इसप्रकार जो इंद्रियां और प्राण हैं वे पंचभूतोंके विकार हैं, जड हैं, दृश्य हैं,मैं इन्होंका द्रष्टा हूं, ऐसे विचारसे अग्निशालास्थानीं प्राणोंका निषेध किया. फेर विचाररूपी कुदालको लेकर अंतःपुरस्थानापन्न अंतःकरणपर दृष्टि की,तो अंतःकरणकोभी जाना कि, यहभी पंचमहाभूतोंका विकार है, जड है, मैं अंतःकरण नहीं हूं, इसवास्ते अंतःकरणकाभी निषेध किया.

तब वादीने आशंका करीकि, अंतःकरण पंचभूतोंका विकार कैसा है ? पंचभूतोंके शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पांच गुण भिन्न भिन्न हैं, और इन पांचों गुणोंमेंसे कोईभी गुण अंतःकरणमें नहीं और इन पांचोंसे विलक्षण संकल्प, निश्चय, गर्व और स्मरण ये गुण अंतःकरणमें हैं तो अंतःकरण पंचमहाभूतोंका विकार कैसा कहते हो ? तुम्हारा यह कहना संभवता नहीं.

तब सिद्धांती कहते हैं कि,सुन भाई. पंचमहाभूतोंके

समष्टिसतोगुणांशोंसे अंतःकरण हुवा. इससे विलक्षण गुण पाये हैं.

प्रश्नः—इस्में प्रमाण क्या है ?

उत्तरः—इस्पर युक्ति प्रमाण है. जैसे पान, चूना, कत्था, सुपारी, तमाखु इन पांचोंके भिन्न भिन्न पांच रूप हैं,लालरूप किसीकाभी नही है, परंतु जिस समय पांचोंको मिलाय दिया, तब सबोंका एक लालरूप हो गया. इसीप्रकार दार्ष्टांतिक समझ लेना.

जब उस पुरुषने अंतःपुरस्थानीय अंतःकरणको निषेध किया,फेर विचाररूपी कुदालसे बुद्धिरूपी शिलाका निषेध किया, तब पुरुषस्थानी बुद्धिसे पर परमात्मा प्रगट हुआ; सोई गीतामें कहा है. ॥ यो बुद्धेःपरतस्तु सः ॥ इसका अर्थ. जो बुद्धिसे पर बुद्धिका साक्षी सो परमात्मा है. तब बुद्धिमें प्रतिबिंबित चिदाभास था सो अपने बिंबमें लय होगया, और उसके लय होतेही पुरुषकी द्रव्यस्थानी स्वरूपकी इच्छा निवर्त हुई और अपने स्वरूपबिषे स्थित होगया. धृतिरूपी जो स्त्री संग

थी सो बुढियास्थानी प्रारब्ध होगई. फिर चारों स्त्रिया जो प्रगट हुईं सो कौन हैं ? सो कहते हैं वे स्त्रियां मैत्री, करुणा,मुदिता,उपेक्षा इन चारोंको धारण किये हुये हैं.

प्रश्नः—मैत्री आदिकका प्रमाण क्या है.

उत्तरः—इसकों पंतजलिका सूत्र प्रमाण है ॥ **मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्** ॥ इस्का अर्थ कहते हैं कि,सुखी साधुपुरुषोंविषे मित्रता,दुःखीजनोंविषे कृपा,पुण्यात्मकों विषे प्रीति, पापियोंविषे त्याग ऐसी भावनासे चित्त प्रसन्न होता है (एकाग्रस्थितिपदकों प्राप्त होता है). वैराग्यरूपी खड्ग और विचाररूपी कुदाल लेके स्थित है यह वार्ता कही थी, उस्को आरक्त कहिये कि विरक्त कहिये ! सो इसको वीतराग कहे हैं.

यह चार स्त्रियोंके दृष्टांतविषे यथार्थ ज्ञान प्राप्त होनेकी प्रथम युक्ति संपूर्ण ॥ १ ॥

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

जीवन्मुक्त और विदेह मुक्तके निर्णयकी दूसरी युक्ति।

प्रश्नः—वादी पूछता है कि, सुषुप्तिविषे और ज्ञानीकी अवस्थाविषे क्या भेद है? और तुम ज्ञान किसको मानते हो?

उत्तरः—हम जगत्के अत्यंताभाव[1]को ज्ञान मानते हैं.

प्रश्नः—जगतका अभाव तो सुषुप्तिमेंभी होता है?

उत्तरः—सुषुप्तिमें जगतका अत्यंताभाव नहीं होता कार्यका अभाव होता है, कारणका अभाव नहीं होता, और सुषुप्ति जैसा अभाव और कहींभी होता है.

---

१ "त्रैकालिकसंसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकोत्यन्ताभावः" इसका अर्थः—भूत वर्तमान और भविष्य कालमें (नित्य) संसर्ग(संबंध)करके अवच्छिन्न जो वस्तु, तिसका अभाव सो अत्यंताभाव. जैसे "भूतले घटो नास्ति" भूतलमें घट नहीं है (त्रिकालमें संसर्गकरके अवच्छिन्न घटका जो अभाव तिस अभाव करके युक्त भूतल है) तैसे तीनोंही कालमें जो जगतका अभाव (ब्रह्म) सो ज्ञान है.

प्रश्न–और कहां होता है ?

उत्तर–मूर्च्छामें और प्रलयमें होता है. इतनी जगें जो अभाव होय है सो अनित्य करके होता है, नित्य करके नहीं होता, यातें अनित्य अभाव होता है नित्य नहीं होता. काहेतें कि, इन जगें अभाव होकरके फिर जगत् उदयभी होता है, यातें अत्यंताभाव नहीं होता. यातें हमने भावरूपही अभाव सिद्ध किया है. इस्का तात्पर्य यह है कि, ज्ञानीके दृष्टिमें जगतका अभाव है और अज्ञानीकी दृष्टिमें भाव है. जैसें रज्जूका नहीं रूप जाननेवालेको सर्पका भाव है.

प्रश्नः–इसमें प्रमाण क्या है ?

उत्तरः–स्मृति प्रमाण है ॥ **यथैव द्विविधा रज्जुर्ज्ञानिनोऽज्ञानिनो ह्ययम्** ॥ इसका अर्थ यह है कि, जैसे ज्ञानीको और अज्ञानीको यह रज्जुका दोप्रकारका भान होता है.

प्रश्नः–स्मृतिमें कहा है ॥ **क्रीडेयंमतियुक्तस्य जाग्रत्यपि सुषुप्तिवत् । चेष्टते बालव-**

ज्ज्ञानी ब्रह्मानंदेन तोषितः॥इस्का अर्थ कहते हैं, जाग्रत् अवस्थामें निश्चयकरके सुषुप्तिकी नांई ज्ञानीकी बुद्धि है, उन्मत्तकी नांई क्रीडा करै है और ब्रह्मानंद-करके तृप्त हुवा ज्ञानी बालककीनांई चेष्टा करता है.

उत्तरः—इस स्मृतिका अर्थ तू नहीं समझा. जाग्रत-विषे सुषुप्ति नहीं कही सुषुप्तिकी नांई कही है. सुषुप्ति-विषे मिथ्याभास[1] नहीं रहता, और ज्ञानीकी अवस्था-विषे मिथ्याभास रहता है. जो सुषुप्तिसरीखी ज्ञानीकी अवस्था हुई तो ज्ञानी उपदेश कैसे करे.

प्रश्नः—हम मिथ्याभास रहनेको ज्ञान नहीं मानते; जिसमें मिथ्याभास नहीं रहे तिसको ज्ञान मानते हैं.

उत्तरः—जो मिथ्याभास नही रहे तो ज्ञानी जिवन्मु-क्त नहीं बनेगा.

प्रश्नः—जीवन्मुक्ति नहीं तो विदेहमुक्ति तो होयगी?

---

१ दृष्टिदोषादिकारणोंसे सत्यके उपर असत्यका भास. जैसे दोरीके उपर यह सर्प है ऐसा भास होना अथवा सूर्यके किरण वालुकामय भूमी-पर पडनेसे जो जलका भ्रम होता है सो मिथ्याभास है.

उत्तरः–जीवन्मुक्तिही नहीं हुई तो विदेहमुक्ति कैसी होयगी. काहेतें जो जीवन्मुक्त ज्ञानी होय सो उपदेश करता है और सोही विदेहमुक्त होता है. इससे जीवन्मुक्त न होवें तो और लोकोंका कल्याण कैसे होवे?

प्रश्नः–और लोकोंके कल्याणसे हमको क्या प्रयोजन है, अपना कल्याण होना चाहिये.

उत्तरः–तुम्हारा कल्याण कहांसे हुवा. क्यों कि, तुम्हारे गुरुको तो विदेहमुक्ति हुई तो तुमको किसने उपदेश किया? यातें विदेहमुक्तिभी नहीं बनी. जिसको जीवन्मुक्ति होती है तिसको विदेहमुक्ति होती है.

प्रश्नः–हमने मिथ्याभासहीको ज्ञान माना, और मिथ्याभास होनेहीको मुक्ति माने हैं इसके विना नहीं मानते.

उत्तरः–अब विदेहमुक्ति नहीं बनेगी. जो विदेहमुक्ति नहीं तो निर्विकल्प[1] सिद्धांत नहीं होता.

प्रश्नः–तो तुमही कहो व्यवस्था किस प्रकार बनती है?

---

१ संशयरहित.

उत्तरः--चार साधनोंकरके[१] संपन्न मुमुक्षु गुरुके समीप जाय तो श्रवण मनन निदिध्यासन करके साक्षात्कार होता है और साक्षात्कार होनेसे जीवन्मुक्त होता है, सो जीवन्मुक्तही विदेहमुक्त होता है, इससे यह अर्थ स्पष्ट हुआ कि जाग्रत् विषे सुषुप्तिसी ज्ञानीकी अवस्था है, सुषुप्तिही ज्ञानीकी अवस्था नहीं है. फेर ज्ञानीकी दशा कैसी है ? जैसे उन्मत्त क्रीडा करता है इस तरह ज्ञानी व्यवहार करता है और क्या करता हूं इसकी कुछ सुध नहीं है; और जो कुछ सुध नहीं है सो तो सुषुप्ति है, और जो कुछ क्रीडा करै है सो मिथ्याभास है. सुषुप्तिमें मिथ्याभास होता नहीं इससे जाग्रतमेंही सुषुप्तिकी नांई वर्त्तै है. फेर ज्ञानीकी अवस्था कैसी है कि,

---

१ साधनानि, "नित्यानित्यवस्तुविवेकेहामुत्रफलभोगविरागशमदमादिसंपत्तिमुमुक्षत्वानि" इसका अर्थ यह है कि, नित्य (ब्रह्म) और अनित्य (ब्रह्मसे अन्य) वस्तुका विचार; इसलोकमें और परलोकमें फल भोगनेकी (ऐहिक माला चंदन आदि और पारलौकिक अमृतादिकोंकी) इच्छा न करना; शम, दम, उपराति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा यह संपत्ति; और मुमुक्षुत्व (मोक्ष होनेकी इच्छा) यह चार साधन है.

ज्ञानी बालककी नांई चेष्टा करता है. मतवारेका दृष्टांत तो सूक्ष्म है, और बालकका दृष्टांत स्थूल है; काहेतें मतवारेके भीतरकी इच्छाकी किसीकों खबर नहीं होती और बालकको भूख लगे तो रुदन सुनाई दे है और नहीं दे हैं और ज्ञानी ब्रह्मानंद करके तृप्त है.

प्रश्नः–इससे यह प्रतीत हुआ कि, ज्ञानीकी अवस्था जाग्रतकी नाई है. काहेतें जाग्रत् विषे स्वप्न और सुषुप्तिका मिथ्याभास होता है, और सुषुप्तिविषे जाग्रत् और स्वप्नका मिथ्याभास नहीं?

उत्तरः–ऐसा मत कहो. जाग्रत् तो दीपककी नाई है. और ज्ञानीकी अवस्था सूर्यकी नांई है; काहेतें, दीपक थोडा प्रकाशै है और अपनी सुध नहीं और सूर्य सबको प्रकाशै है और आपको भी जानै है; इससे ज्ञानीकी औरही दशा जाग्रत्सीभी नहीं.

प्रश्नः–सूर्यकी नांई जो ज्ञान कहते हो, सो; ज्ञान अंतःकरणको हुवा, सो अंतःकरण अनित्य है, इससे ज्ञानी और ज्ञानीकी तुरीयावस्थाभी अनित्य हुई.

उत्तरः—हम क्या तुरीयाको शुद्ध मानै हैं ? नही. तुरीयातीतको शुद्ध मानै हैं. तिसपर एक दृष्टांत कहें हैं. जैसे किसी राजाके आगे वेश्यानें नृत्य किया, फिर नटवेने तमाशा किया सोभी राजानें देखा. इतनेमें जो आंधी आई तिससे दीपक बुझ गये, सबोंका खेल बिगड गया, तिन सबोंका तमाशाभी देखा. राजा तिन सबोंसे आपको भिन्न मानै हैं. अब **दार्ष्टांतिक** कहते हैं. तैसेहि राजारूपी चैतन्य, वेश्या, नटवा और आंधी रूपी जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति प्रकाशता है, और आप ज्ञान स्वरूप है.

प्रश्नः—तुम तो कहते थे हम क्या तुरीयाको शुद्ध मानै हैं ? और वर्णन तो शुद्ध करके किया.

उत्तरः—तुरीयाकों हम ज्ञानस्वरूपही जानते हैं, परंतु इसका जानना कहिये साक्षित्वता सोई मलिनता है.

प्रश्नः—फिर शुद्ध किसकों मानते हो ?

उत्तरः—तुरीयातीतकों शुद्ध मानते हैं.

प्रश्नः—यही शुद्ध है वा और है?

उत्तरः—उस विचारद्वारा जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्तिके अभावसें यही तुरीयातीत होता है.

प्रश्नः—विचार तो अंतःकरणकों होता है, और सो अंतःकरण अनित्य है; यह तो तुम पहले ही निषेध कर आयेथे.

उत्तरः—अनित्यकरके नित्यकी प्रतीति होती है.

प्रश्नः—किसप्रकार होती है? अनित्यमें कभी नित्यकी प्रतीति हुई नहीं.

उत्तरः—जैसे दर्पण अनित्य है तिसके देखने करके मुख जो नित्य है तिस्की प्रतीति होती है.

प्रश्नः—जैसे दर्पणमें प्रतिबिंब दीखता है सो मिथ्या है तैसेही बुद्धिप्रतिबिंबित मिथ्या है इससे सत्यस्वरूपकी प्राप्ति किसप्रकार भई?

उत्तरः—झूठा तो है, परंतु प्रतिबिंबके देखनेकरके बिंबकी प्रतीति होती है. जैसे नेत्र दर्पणमें अपने मिथ्या प्रतिबिंबको देखकरके अपनी सत्यप्रतीति करै है. फेर

कोई पुरुष नेत्रविषे विकार कहे तो प्रतीतिमें नहीं आ-
वना संशयरहित है.

प्रश्नः–इसमें प्रमाण क्या है ?

उत्तरः–स्मृति प्रमाण है सो कहते हैं ॥ **यथा नेत्रं दर्पणे स्वकं रूपं स्वयमेव लक्षयति तथा आत्मापि शुद्धबुद्धौ स्वकमखंडसच्चिदानंदस्वरूपं स्वयमेव लक्षयति॥** इसका अर्थ यह है. **दृष्टांत** जैसे नेत्र दर्पणमें अपने रूपकों आपही लखै हैं. **दार्ष्टांतिक** कहे हैं तैसेंही आत्माभी शुद्धबुद्धिविषे अपने अखंड सच्चिदानंद स्वरूपकों आपही लखैं है.

प्रश्नः–तो बुद्धि रहनेसे द्वैतापत्ति हुई.

उत्तरः–अद्वैतसिद्धि हुई. कारण ज्ञान बुद्धयादिकोंका बाध कर होता है.

प्रश्नः–तुम स्वकपोलकल्पित कहो हो. ऐसा प्रमाण कहां हैं ?

उत्तरः--हस्तामलजीका वचन प्रमाण हे सोई कहें हैं ॥यथा दर्पणाभाव आभासहानौ मुखं विद्यते कल्पनाहीनमेकं ॥ तथा धीवियोगे निराभासको यः स नित्योपलब्धिः स्वरूपोहमात्मा॥ इस्का अर्थ कहे हैं. जैसे दर्पणका अभाव होनेमें आभासकी निवृत्ति होनेसे तीजो कल्पना रहित एकमुखमात्र है तैसेही बुद्धिका अभाव होनेसे तीजो आभासरहित जो सो नित्यप्राप्तिस्वरूप मैं आत्मा हूं और हम इसीकों ज्ञान मानै हैं. यही सब ज्ञानियोंका अनुभव है.

यह जीवन्मुक्त और विदेहमुक्तके निर्णयकी
दूसरी युक्ति संपूर्ण हुई ॥ २ ॥

ॐ नमः सच्चिदानंदस्वरूपाय।

बुद्धिके निर्णयमें तत्वज्ञान होनेकी तीसरी युक्ति।

अब बुद्धिके निर्णयमें तत्वज्ञान होनेकी तीसरी युक्ति कहता हूं—सिद्धांतीने कहा कि, आत्माविषे जगत् ऐसा स्फुरैहै जैसे जलविषे तरंग. वादीनें आशंका करी कि, जल विषे तो अवकाश पावैहै तिससे तरंग स्फुरै है. काहेतैं कि, जल एकदेशमें है और आत्मा सर्वव्यापी है आत्मामें अवकाश कहां है कि जिसविषे जगत् स्फुरै. और अवकाश है तो आत्माभी एकदेशावच्छिन्न हुवा, सर्वव्यापी न हुवा.

उत्तरः—यह दृष्टांत मुमुक्षुकी दृष्टिको ठहरावनेके अर्थ दिया है कि, तरंगके दृष्टांत करके मुमुक्षुकी दृष्टि ठहरे. किसप्रकार कि, जैसे दो पुरुष जलके किनारेपर बैठे हैं एक पुरुषके दृष्टीकों तो जलमात्रहीका भान होता

है, तरंगादिकोंका भान नहीं होता. और एक पुरुषकी दृष्टीको तरंगोंहीका भान होता है जलका भान नहीं होता. इसीप्रकार एक पुरुषरूपी ज्ञानीकी दृष्टीमें जलस्थानी आत्मामात्रकाही भान होता है, तरंगरूपी जगतका भान नहीं होता. और दूसरे अज्ञानी पुरुषकी दृष्टिमें तरंगस्थानी जगतकाही भान होता है,आत्माका भान नहीं होता. इससे जिज्ञासूकूं कहा कि, जगत् तरंगकी नाईं है, सत्य नहीं है.

प्रश्नः--तुम कहते हो कि, तरंग सत्य नहीं है और तरंगका तो प्रत्यक्ष भान होता है.

उत्तरः--तूं यह हमारी चादर ले करके तरंगको जलमेंसे पकड लाव. तब सो पुरुष चादर लेकर गया और सारे जलमें फेरी परंतु तरंग एकभी नहीं पाई. तब उसने कहा कि, महाराज ! तरंग कोई हाथ नहीं लगती जलही मात्र है. तब पुरुषने कहा कि, ठीक है. तो तूं ही देख. तूं कहता था कि तरंग सत्य है सो कहां गई ? इससे जलरूपी चिदानंदही सत्य है तरंगरूपी जगत् किंचिन्मात्र सत्य नहीं.

प्रश्नः–चादर स्थानीं क्या दिया ?

उत्तरः--गुरुने अपनी विचारात्मक दृष्टिरूपी चादर दीनी. तिस विचारात्मक दृष्टिसे तरंगरूपी जगत् कुछभी नहींपाया. "अस्ति भाति प्रियता" मात्रही पाया[1].

प्रश्नः--ऐसा विचार किसकरके होता है ?

उत्तरः--शुद्ध बुद्धिकरके होता है.

प्रश्नः–सो शुद्धबुद्धि कैसी है?

उत्तरः–शुद्धबुद्धि सूक्ष्मसे सूक्ष्म और महान्से महान् है.

प्रश्नः--एक वस्तुविषे दो अर्थ सूक्ष्म और महान् किसप्रकार घटे हैं? जैसे पिताविषे छोटा और बडा दो विकल्प किसप्रकार होवैं.

उत्तरः--जैसे आकाशके एक देशमें सूर्यही सूक्ष्मसें सूक्ष्म और महान्से महान् है. काहेतें कि, सर्वव्यापीही सूर्य सर्वत्र प्रतिबिंबित है. और जैसे शरीरके एक देशमें नेत्र है, और नेत्रके एक देशमें पुतली है, और पुत-

---

१ है, भासता है.

लीके एक देशमें तिल है, और तिलके एक देशमें प्रकाश है, सो प्रकाश सूक्ष्मसे सूक्ष्म है और महानसे महान् है. कैसाकि, संपूर्ण ध्रुवादिक तिसकरके देखे जाय हैं.जहां दृष्टी जाय तहांही नेत्रव्यापक क्या है कि प्रकाशही व्यापक है; इसीप्रकार बुद्धि अति सूक्ष्मसे सूक्ष्म है कि कुछ भान नहीं होती. कितने लोक इसमें वाद करते हैं. कोई कहते हैं कि बुद्धि सावयव है, और कोई कहैहै कि निरवयव है. और महानसे महान् है कि संपूर्णका अनुभव करे है.

प्रश्नः--तो तुम निर्णय करके कहो कि बुद्धि सावयव है कि निरवयव है?

उत्तरः--बुद्धि सावयव है.

प्रश्नः--सावयव काहेतें निश्चय करी? रूपतो कुछ दिखाई नहीं देता.

उत्तरः--सुनवादी! जो बुद्धि सावयव न हो तो योगी कहां बैठ करके देखते हैं? यातें सावयव है.

प्रश्नः--जो बुद्धि ऐसी अतिसूक्ष्म है कि, निरवयव समान है तो प्रतिबिंबकों कैसे ग्रहण करे है?

उत्तरः--प्रतिबिंबको ऐसे ग्रहण करे है कि, जैसे वायु सुगंधकों ग्रहण करता है.

प्रश्नः—ऐसी बुद्धि स्वतःही होवे है अथवा बनायेतें बनै है ?

उत्तरः—विचाररूपी बुद्धि बनावनेसे होती है, स्वतः नही होती. इसके बनावनेकी दो युक्ति है. एक प्रकार शीघ्रही बनै है, और एक प्रकार चिरकालमें होता है.

प्रश्नः—कोई इसीपर दृष्टांत कहो.

उत्तरः—इसपर यह दृष्टांत है—जैसे दो पुरुषोंको न्यारे न्यारे हो बंगले बनावनेकी इच्छा हुई. एक पुरुषने तो बहुत कारीगर लगाय दिये, और एक पुरुषने एकही कारीगर लगाय दिया. जिस पुरुषने बहुत कारीगर लगाये तिसका बंगला शीघ्रही बन गया, और जिसने एक कारीगर लगाया है तिसका बंगला चिरकालमें बना. अब **दार्ष्टांत** कहते हैं एक मुमुक्षु पुरुषनें

बुद्धिरूपी बंगलेकों बनावनेके अर्थ सत्संगरूपी बहुत कारीगर लगाये, तिसका बुद्धिरूपी बंगला शीघ्रही बन गया. दूसरे मुमुक्षु पुरुषनें योगरूपी एकही कारीगर बुद्धिरूपी बंगला बनावनेके अर्थ लगाया, तिसका बुद्धिरूपी बंगला बहुत चिर कालमें बन गया.

प्रश्नः--ठीक. परंतु बंगला बनावने विषे तो हथियार होवे है. कारीगर स्थानी मुमुक्षुके यहां हथियार स्थानी क्या है. वे तो विरक्तही बैठे हैं.

उत्तरः--यहां श्रुति, स्मृति,युक्ति,अनुभव, दृष्टांत और दार्ष्टांतिक रूपी हथियारोंकरके बुद्धिरूपी बंगला बना.

प्रश्नः--ऐसी बुद्धि करके प्रयोजन क्या सिद्ध हुवा? अथवा बातेंही बनावो हो.

उत्तरः--ऐसी बुद्धि करके ज्ञान होता है.

प्रश्नः--तो ज्ञान बुद्धिजन्य हुवा जो उत्पन्न हुवा है तिसका नाशभी होयगा?

उत्तरः--यह ज्ञानरूपी पुत्र बुद्धिरूपी माताका अभाव करके होय है.

प्रश्नः--ऐसा तो कहीं अनर्थका वचन जगत्में सुना नहीं कि, माताका अभाव करके पुत्र होय.

उत्तरः--सुन वादी! जो केकडा होता है सो अपनी माताकों नाश करके होता है. तैसेही बुद्धि-रूपी माताका अभाव करके केकडारूपी ज्ञान होता है.

प्रश्नः—बुद्धिकी शुद्धि और अभाव विषे योग और ज्ञान साधन हैं इसका प्रमाण कहां हैं.

उत्तरः—स्मृति प्रमाण है॥ **द्वौ क्रमौ चित्तनाशस्य योगो ज्ञानं च राघव॥ योगस्तद्वृत्तिरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम्॥** इसका अर्थ यह है, हे राघव! चित्तकेनाशके दो क्रम है. योग और ज्ञान. योग तिस चित्तकी वृत्तिका रोकनेवाला है, और निश्चयकरके ज्ञान भलेप्रकार साक्षात्कारका साधन है. ज्ञानकी प्राप्ति विचारकरके होती है.

यह बुद्धिके निर्णयविषे तत्वज्ञान होनेकी
तीसरी युक्ति संपूर्ण हुई ॥ ३ ॥

ॐ नमो ब्रह्मणे ।

कर्तृत्वभोक्तृत्वके निर्णयकी चतुर्थी युक्ति ।

अब कर्तृत्व भोक्तृत्वके निर्णयकी चतुर्थी युक्ति कहता हूं–सिद्धांतीने प्रश्न किया कि, जो अहंकर्तृत्व भोक्तृत्व है सो उन्के भिन्न मानते हो कि अभिन्न मानते हो वा भिन्नाभिन्न मानते हो? जो तुम भिन्न मानते हो तो इन्के सुख दुःख होने करके तुमको सुखदुःख नहीं हुये चाहिये. और जो तुम कहो कि अभिन्न है तो उनके अभाव होने करके तुम्हाराभी अभाव होना चाहिये और जो कहो कि भिन्नाभिन्न है तो बनता नही. जैसे तम और प्रकाश परस्पर विरोधि होनेसे एक नहीं होते. अथवा कोई पुरुषने कहा फलानां जीवैभी है और मराभी है यह नहीं बनता.

उत्तरः--वादी कहता है. कर्तृत्वभोक्तृत्व जो है सो आकाशविषे घटकी नांइ है.

प्रश्नः--तुम आकाशको भिन्न मानते हो कि अभिन्न मानते हो कि भिन्नाभिन्न मानते हो ?

उत्तरः—भिन्न मानते हैं.

प्रश्नः—जो भिन्न मानते हो तो भिन्न हम आगेही निषेधकर आये हैं यातें भिन्न नहीं बनता.और जो तुम अभिन्न मानते हो तो घटका नाश होनेसे घटाकाशभी नाश होना चाहिये. इसतें कर्तृत्वभोक्तृत्वका नाश होनेसे तुम्हाराभी नाश होना चाहिये ?

उत्तरः—घटका नाश होनेसे घटाकाशका नाश नहीं होता, महदाकाशमें लय होता है.

प्रश्नः—बडे घटस्थानी ब्रह्मांडका अभाव होनेसे महदाकाश कहां रहता है ? महदाकाशभी नहीं रहता है. यातें यह तुम्हारा उत्तर नहीं बना.

उत्तरः—अहंकर्तृत्व भोक्तृत्व जो है सो न भिन्न बनै, न अभिन्न बनते हैं न भिन्नाभिन्न बनते हैं. काहेतें कि, वास्तवतें कल्पित है.

प्रश्नः--जो कल्पित है तो गुरु शास्त्र किस लियें खडे हैं ?

उत्तरः--केवल भ्रांतिकों निवर्तन करनेके लिये हैं. जिसप्रकार रज्जूविषे सर्पकी भ्रांति होती है सो उजाड लेकरके देखे तो निवृत्त होती है.

सिद्धांती कहते हैं कि, तुमसे यथार्थ निर्णय नहीं हुआ इससे हमारेसे श्रवण कर. अहं जो है सो सत्य है और कर्तृत्वभोक्तृत्व जो हैं सो मिथ्या है.न भिन्न बनते, न अभिन्न बनते, न भिन्नाभिन्न बनते हैं.

प्रश्नः--वादी कहता है इसमें प्रमाण क्या है?

उत्तरः--इसमें स्मृति प्रमाण है. ॥ **अहंवृत्तिविषयो ह्यात्मा**॥इसका अर्थ यह है कि, (हि) निश्चय करके अहंवृत्तिका विषय आत्मा है.

प्रश्नः--अहं कर्तृत्व भोक्तृत्व जो तुम मिथ्या कहते हो तो गुरु शास्त्र क्यों खडे हैं?

उत्तरः--इस मिथ्याकी निवृत्ति करनेके लिये.

प्रश्नः--जो मिथ्या है तो भान किसप्रकार होवे? और जो भानभी होय तो तिसकी निवृति क्या हुई?

उत्तरः--मिथ्याभी भान होता है; किस प्रकार कि, जैसे रज्जूविषे सर्प, सीपी विषे रजतादिक मिथ्या है और भान होता है.

प्रश्नः–रज्जू और सर्पादिककी तो सादृश्यता है यहां प्रपंच और आत्माकी तो क्या सादृश्यता है? यातें तुम्हारा दृष्टांत नहीं बना. और भी इसमें दोष हैं. सर्वदेशमें अवर्ण होता है और आत्माका अज्ञान एक देशमें कहा है, इससे तुम्हारा कहना नहीं बनता.

उत्तरः–और दृष्टांत देता है. जिसप्रकार स्फटिक शुद्ध है जिसके समीप काले पीले पुष्प होनेसे काले पीले रंगका भान होता है, यातें इसमें काला पीला रंग स्फटिक विषे मिथ्या है. यातें स्फटिक और पुष्पकी सादृश्यताभी नहीं और सर्वदेशी अवर्णभी नहीं बना परंतु काला पीला भान होता है. **दार्ष्टांत** कहते हैं इसी प्रकार स्फटिकस्थानी आत्मा शुद्ध है; काले पीले पुष्प-स्थानी अंतःकरणके संयोग करके प्रारब्धके वशतें सुख दुःखादिक भान होते हैं.

प्रश्नः--इसमें प्रमाण क्या है ?

उत्तरः--स्मृति प्रमाण है ॥यथा स्फटिकं शुद्धमपि ज्ञातं रक्तपुष्पादिसमीपकसंबंधाल्लोहितत्ववद्भाति तद्वज्ज्ञानिनामात्मा शुद्धमपि ज्ञातं प्रारब्धवशाद्विश्वकर्तृत्वादि अंतःकरणसंबंधात्प्रपंचादिवद्भातीति सोपाधिको भ्रमः ॥ इसका अर्थ यह है कि, जैसे स्फटिकको शुद्धभी जान रक्तपुष्पादिकके समीप संबंधसे लालकी नाई भान होता है, तैसेही ज्ञानियोंका आत्मा शुद्धभी जान प्रारब्धके वशतें जगतका कर्तृत्वादिक अंतःकरणके संबंधसे प्रपंचकी नाई भान होता है यह सोपाधिकभ्रम है ऐसा ज्ञानियोंके प्रतिकहा है.

यह कर्तृत्वभोक्तृत्वके निर्णयकी चतुर्थी
युक्ति संपूर्ण हुई ॥ ४ ॥

ॐ नमो भगवते

जीवरूपी वेश्याको नांचनेके निर्णयमें तत्वज्ञानकी पांचवी युक्ति ।

अब जीवरूपी वेश्याके नांचनेके निर्णयमें तत्वज्ञान होनेकी पांचवी युक्ति कहता हूं—**दृष्टांत**—एक वेश्या दो सखियां साथ लेंकरके राजाके रिजवनेके अर्थ नाचे है परंतु अपने और सखियांके वृत्तांतको नही जानती है. जब नाचनेसे थक गई तब राजाकूं विनती करी कि मुझे बैठनेकी आज्ञा करो. जब राजाने आज्ञा दीनी तब आप नाचनेसे निवृत्त हुई और बैठके दोनों सखियोंके नाचकों देखती है. और तिनके गुण अवगुणोंकोभी देखती है और राजाकोंभी देखती है और बजंत्रियोंको, गावनेको, तिनके वस्त्रको और गहनेकोंभी देखती है; तब यह वेश्या सबसें जुदी होकरके सुखी होती भई.

अब **दार्ष्टांत** कहते हैं राजारूपी ईश्वरकों,जीवरूपी नायिका, मन और बुद्धिरूपी सखियोंको साथ लेकरके प्रसन्न करनेके अर्थ, कर्मादिक साधनरूपी नाच नाचे है; परंतु अपने और सखियोंके वृत्तांतरूपी कर्मादिक स्वरूपकों नहीं जानती है. जब नाचनेसे थकनेरूपी कर्मादिक उपासनासे अलकसाई तब राजारूपी ईश्वरकूं विनतीरूपी प्रश्न किया कि, हे भगवन्! मुझे बैठनेकी आज्ञारूपी कर्मादिक उपासनासे निवृत्त होनेकी आज्ञा देओ. तब राजारूपी ईश्वरसे आज्ञाको पाकर नाचनेसे निवृत्त होकरके मन और बुद्धिरूपी दोनो सखियोंके व्यवहाररूपी नाचको देखती है.और तिनके गुण और अवगुणरूपी सुखदुखों-को देखै है और ईश्वररूपी राजाकूंभी देखै है.और इंद्रिया-रूपी बजंत्रियोंको,औरप्राणरूपी गावनेकों और तिनोंके वस्त्रगहने रूपी स्थूल देहकोंभी देखनेरूपी अनुभव करै है इन सबसे भिन्न होकरके आनंदरूप सुखी है सो पूर्ण ब्रह्म है.

प्रश्नः—इसमें प्रमाण क्या है ?

उत्तरः—स्मृति प्रमाण है सोई कहै है ॥ **देहेंद्रियमनोबुद्धिप्रकृतिभ्यो विलक्षणम् । तद्वृत्तिसाक्षिणं विद्यादात्मानं राजवत्सदा ॥** इसका अर्थ यह है, देह, इंद्रियां, मन, बुद्धि और प्रकृति कहिये अज्ञान इन्होंसे जो विलक्षण हैं तिन्होंकी वृत्तियोंका साक्षी आत्माकों राजाकीन्याई सदा जाननेको योग्य है.

प्रश्नः—आत्माकों स्त्री करके क्यों वर्णन किया?

उत्तरः—पुरुष होकरके विपरीत वर्तै सोई स्त्री है; काहेतैं, पुरुषसे विपरीत धर्मवान् स्त्री है इससे स्त्री कहा.

यह जीवरूपी वेश्याके नांचनेके निर्णयविषे तत्वज्ञानकी पांचमी युक्ति संपूर्ण हुई ॥ ५ ॥

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः।

तत्त्वमसिश्रुत्यर्थको अन्यप्रकार सिद्ध-करनेकी छट्ठी युक्ति।

अब तत्त्वमसि श्रुतिके अर्थको और प्रकारकरके सिद्ध करनेवाली छठ्ठी युक्ति कहता हूं—

प्रश्नः—तुम्हारे मतमें मोक्ष किसप्रकार है ?

उत्तरः—हमारे मतमें मोक्ष आत्मज्ञानकरके होय है.

प्रश्नः—आत्मज्ञान किसप्रकार होता है कि, जिसमें मन और वाणीकी प्राप्ति नहीं. यहां श्रुति प्रमाण है ॥अवा[1]ङ्मनसगोचरम्॥ इस्का अर्थ वाणी और मनको अगोचर अर्थात् अप्रत्यक्ष है.

उत्तरः—तुम्हारा कहना तो सत्य है. मन और वाणीकों तो गोचर नहीं है परंतु लक्षणाद्वारा ज्ञान होता है.

---

१ वाणी मनसहित जिसको प्राप्त न होके परावृत्त होती है सो (ब्रह्म)

प्रश्नः—लक्षणा किसप्रकार ?

उत्तरः—जहत् और अजहल्लक्षणा इन दोनोंका त्याग कर जहदजहल्लक्षणाकरके ज्ञान होता है.

प्रश्नः—जहदजहल्लक्षणा किसप्रकारकी है?

उत्तरः—**तत्**पद और त्वंपद दोनोंके वाच्यार्थको त्यागकरके लक्ष्यार्थविषे एकता होय सोई आत्मज्ञान है.

प्रश्नः—जिसप्रकार त्वंपद प्रत्यक्ष है इसीप्रकार तत्पद प्रत्यक्ष होय तो वाच्यार्थका त्याग होय और जो तुमने कथनमात्रकर दियाकि, हमनें तत्पद और त्वंपदके वाच्यार्थोंका त्याग कर दिया सो नहीं होता. जैसे किसी दरिद्रीने कह दिया मैं राजा हूं. किसीने कहा अच्छा; दश सहस्र रुपया हमको देवो, तब कहांसे देवे. यातें कथन करनेमें मात्र राजा है इससे तत्पदके प्रत्यक्ष किये विना वाच्यार्थका त्याग होता नहीं यातें तुम्हारा सिद्धांत नहीं बना.

उत्तरः—सुन भाई! तेरी समझमें नहीं आया. जिसप्रकार त्वंपद प्रत्यक्ष है, इसही प्रकार तत्पदभी प्रत्यक्ष है.

अब तत्पदकों प्रत्यक्ष करके दिखावे है और तेरे अर्थ नया प्रकरण खडा करै हैं. ठीक. किसी प्रकार तेरा अज्ञान नष्ट होय. पहिले आचार्योंनेभी बावनपक्ष वेदांतके सिद्धकिये हैं;किसी प्रकार मुमुक्षुकों ज्ञान होय.सो इस विचारविषे तत्पदरूपी गुरु प्रत्यक्ष है. काहेतें कि गुरुको मुमुक्षुने भक्तिपूर्वक साक्षात् ईश्वर माना है.

प्रश्नः—इसमें प्रमाण क्या ? यहां क्या भक्तिका प्रकरण है ? ज्ञानकांडमें ऐसा अर्थ सिद्ध नहीं होता.

उत्तरः—सुन भाई ! तैंनें ज्ञानकांड सुना कैसा ? देखो हमारे अर्थ विषे यह श्रुति प्रमाण है,जैसे--॥**यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । यस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः ॥** इसका अर्थ यह है, जिस पुरुषकी जिसप्रकार देव कहिये ईश्वरविषे परा (श्रेष्ठ) भक्ति है, तिसीप्रकार गुरुविषे होय. तिस महात्माकों ये कहे हुए अर्थ प्रकाशै है. अब तत्पद और त्वंपदके वाच्यार्थकों त्याग करके लक्ष्यार्थविषे एकता दिखावै है. इसहीपक्षविषे तत्पदरूप

गुरुका वाच्यार्थ क्या है कि, देह, इंद्रियां, प्राण, मन और "तत्त्वमसि" श्रुति करके उपदेश किया जो ज्ञान सो है. अब शिष्यका वाच्यार्थ कहते हैं कि, देह, इंद्रियां, प्राण, मन और अज्ञान इन दोनोंके वाच्यार्थों-कों त्याग करके "**अहंब्रह्मास्मि**" ऐसा भया जो अनुभव कि, मैं ब्रह्म हूं. अहं ब्रह्म गुरुका लक्ष्यार्थ है इसप्रकार जहदजहल्लक्षणा सिद्ध हुई. इसका तात्पर्य यह है कि, गुरुका ज्ञान शिष्यके अज्ञानकों नाश करके आपभी लय हो जावे है और शिष्य ज्ञानस्वरूपही रहा. रे वादी ! अब तुम विचार करो कि, मन वाणीको वह ईश्वर गम्य नहीं हुआ और इसका शिष्यको ज्ञान हुवा.

यह तत्त्वमसिश्रुतिके अर्थकों और प्रकार करके सिद्ध करनेवाली छट्ठी युक्ति संपूर्ण हुई॥६॥

ॐ नमो ब्रह्मणे.

वारपारके निर्णयमें तत्वज्ञान प्राप्त होनेकी युक्ति ७

अब वारपारके निर्णयमें तत्वज्ञान प्राप्त होनेकी सातवी युक्ति कहताहूं.प्रथम **दृष्टांत** कहते हैं.कोई पुरुष विचरता हुवा नदीके निकटगया. तहां लोक परतीरकों जातेथे.इसनें कहाकि मैंभी तुम्हारे संग परतीरको चलूं. सो उनके संग परतीरकोंगया,जब पार पहुंचा तो उधरसे लोक इधरको आवतेथे, उनकों पूछा कि तुम कहां जाते हो? उन्होंने कहा कि हम पारको जाते हैं. इसनें उनको कहा कि तुम बावले हुये हो पारकूं तो मैं आया हूं. पारके लोकोनें कहा कि तूं बावला हुवा है. हम पारको जावे हैं. जब सौपचास मनुष्योंने ऐसा कहा तब इसने ऐसा जाना कि पार (परतीर) वोही होगा फिर उलटा. फिर आया. जब इधर आया तो फिर लोक उधरकों

जाते देखे तब उनसे पूछा तुम कहां जाते हो? उन्होंने कहा हम पारको जाते हैं. इसने कहा कि पार तो यही है तुम्हारी बुद्धिकों क्या हुवा. उन्होंने कहा कि पार यह नहीं है, पार वोही है,हम पार हीकों जावें हैं, उनके साथ फिर गया;इसही प्रकार कितनीबार इधरसें उधर और उधरसें इधर आया गया;परंतु पार (परतीर) का निश्चय कोई नहीं हुआ. जब अपने मनमें उदास और शोच मान बैठा था, तब किसी महापुरुषनें इसकों दुःखी देखकरके और दया करके पूछा कि,तूं दुःखी क्यों है?तब इसने कहा कि महाराज! पारका ठिकाना नहीं लगता. इधरवाले उधरको पार कहते हैं और उधरवाले इधरकों पार कहते हैं. जब उन्होंने कहा कि हम तुझको पूंछता हूं कि बाप बडा वा बेटा बडा? उसनें कहा कि महाराज! बाप बडा है. फिर उन्होंने कहा कि, और लोकोंकोभी पूछले कि बाप बडा वा बेटा बडा.सबोंने कहा कि, महाराज बापही बडा है. तब महानुभावनें कहा कि, जहां तूं बैठा है यही पारका पार है. अपने अनुभवसे देख ले कि उस परले किनारेका पार यही है

जहां तूं बैठा है. और पार जानेकी क्या इच्छा करै है सो पुरुष जान करके अत्यंत प्रसन्न हुआ.

अब **दार्ष्टांतमें** घटावते हैं. कोई पुरुष कर्मादिकोंके साधन करनेवालोंके संग कर्मादिक करके स्वर्गादिककी प्राप्तिके अर्थ अज्ञानरूपी नदीके पार गया. उधरसे और लोक स्वर्गके भोगोंको भोग करके फिर कमाई करनेको मर्त्य लोकमें आवते थे. यह तो समझा था कि मैं स्वर्गादिकके प्राप्तिके अर्थ अज्ञानरूपी नदीसे पार हो गया.और स्वर्गसे आवनेवालोंने मर्त्यलोकही श्रेष्ठ कहा.

प्रश्नः—इसका प्रमाण कहां लिखा है.

उत्तरः—शास्त्रमें कहा है ॥**गायंति देवाः किल गीतकानि धन्या हि ये भारतभूमिभागे ॥ स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय भवंति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्** ॥ इसका अर्थ यह है कि स्वर्गमें देव इस गीतकों गाते हैं कि, जो पुरुष मर्त्यलोकमें भरतखंडमें उत्पन्न होते हैं वे पुरुष धन्य हैं. तथा स्वर्ग और मोक्षका फल संपादन करनेके वास्ते योग्य

हैं अर्थात् भरतखंड, स्वर्ग और मोक्षका देनेवाला है; इससे देवतावोंसे मनुष्य श्रेष्ठ है. फिर मर्त्य लोकमें और यज्ञादिक कर्म करके स्वर्गादिकको जाते हैं और आते हैं;सो पुरुष थका और बैठ रहा और अज्ञान नष्ट नहीं हुआ. यातें बहुत दुःखी हुआ. कोई ज्ञानी पुरुष आये तिन्होंने दया करके पूंछा कि तूं दुःखी क्यों है ?

प्रश्नः—ज्ञानी तो निर्विषय है तिसको दया कहांसे आई ?

उत्तरः—ज्ञानीको मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा ये चारों रहतीं हैं. इन चारोंका अर्थ कहते हैं. मैत्री कहिये सुखी साधु पुरुषों विषे मित्रदृष्टि. करुणा कहिये दुःखी जनोंपर दया. मुदिता कहिये पुण्यात्माको विषे आनंद. और उपेक्षा कहिये पापी विपरीत व्यवहार-वालोंका त्याग. इसप्रमाण करके उन्होंने दया करी;सो वह पुरुष साधनचतुष्टयकरके संपन्न था. उसने कहा कि महाराज ! इस लोकवाले उस लोकको श्रेष्ठ कहते हैं,और उस लोकवाले इसलोकको श्रेष्ठ कहते हैं. इनमें श्रेष्ठ कौनसा है यह निश्चय नहीं भया,सो उन्होंने बाप

और बेटेस्थानीं निर्गुण और सगुण वर्णन किये और स्वर्गादिककी प्राप्ति सगुणकी उपासनातें होती है और अज्ञानकी निवृत्ति निर्गुणके विचारसे होती है सो सगुणकी उत्पत्तिका कारण निर्गुणही है सो निर्गुणरूप तूंही है ऐसा सिद्ध किया.

प्रश्नः—वादी कहते हैं. कोई प्रमाण कहो ?

उत्तरः—सिद्धांती कहते हैं. ॥**अयमात्मा ब्रह्म** ॥ इसका अर्थ यह है कि,यही आत्मा ब्रह्म है.सो ए विचार करके परमानंदकों प्राप्त हुआ.

यह वारपारके निर्णयविषे तत्त्वज्ञान प्राप्त होनेकी सप्तमी युक्ति संपूर्ण हुई ॥ ७ ॥

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

सनकादिकोंके जन्मादिके निर्णयकी युक्ति ।

अब सनकादिकोंके जन्मादिके निर्णयकी आठवी युक्ति कहता हूं—

वादीनें आशंका करी कि, सनकादिक ज्ञानियोंका जन्म किसप्रकार हुवा ? यह प्रमाणभी है॥**अपांतरतमवसिष्ठसनत्कुमारादीनां निर्गुणब्रह्मविदां पुनः पुनरुत्पत्तिः स्मर्यते । अपांतरमः कलिद्वापरयोः संधौ विष्णुनियोगात्कृष्णद्वैपायनः संबभूवेत्यादिना॥**इसका अर्थ यह है, अपांतरतम ऋषि, वसिष्ठ और सनत्कुमारादिक निर्गुण ब्रह्मके जाननेवाले तिनोंकी वारंवार उत्पत्ति स्मरण की जाती

है. अपांतरतम ऋषि कलियुग और द्वापर युग ये दोनोंके संधिमें विष्णुके संयोगसे व्यासजी होते भये.

उत्तरः—इहां व्यासजीका सूत्र प्रमाण है सो कहते हैं. ॥यावदधिकारमवस्थितिरधिकारिणाम्॥ इसका अर्थ यह है, अपांतरतम ऋषि आदि अधिकारियोंको वेदकी प्रवृत्ति आदिकों विषे और जगतकी व्यवस्थाके हेतुओंविषे और अधिकारियोंविषे परमात्मा करके संयुक्त जबतांई अधिकारकी स्थिति है, जबतांई प्रारब्ध कर्मकी स्थिति है तबतांई अनेक शरीर धारण करके स्थित रहैंगे. सनकादिक ईश्वरकोटीमें हैं. यातें ईश्वरको जन्मकर्मोंकरके बंधन नहीं है; लीलामात्र है. ईश्वरकों जन्मकाल ज्ञानविषे बाधक नहीं है, कारण ईश्वरका जन्म स्वतंत्र है, और ईश्वर ज्ञानस्वरूप है. और दूसरे प्रकार भी कहते हैं. उनके प्रारब्धका भाग इसी प्रकार था. और जो तुम कहो कि, औरोंकाभी प्रारब्ध है तो औरोंको और उन्के बराबर नहीं; काहेतैं, इनका

ज्ञान विस्मरण नहीं हुआ. औरोंको तो पूर्व जन्मकीभी सुध नहीं है; इससे जहां ज्ञानीविषे जन्मादिक कहे हैं तहां ईश्वर कोटीविषेही कहे हैं. कहीं ब्राह्मणादिकोंके नहीं कहे. श्रुति, स्मृति, पुराण और इतिहासमें कहीं प्रमाण नहीं कहा. इससे सनकादिकोंको विकल्प नहीं चाहिये.

यह सनकादिकोंके जन्मादिके निर्णयकी
अष्टमी युक्ति संपूर्ण हुई ॥८॥

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः।

सनकादिकोंकी ब्रह्माकारवृत्तिके निर्णयकी युक्ति।

अथ सनकादिकोंकी ब्रह्माकार वृत्तिके निर्णयकी नवमी युक्ति कहताहूं—

प्रश्नः--सनकादिकोंकी ब्रह्माकार वृत्ति थी, तो तिनको शिवजी नग्न कैसे दीखे? शिवजीके देखनेमें ब्रह्माकार वृत्ति नहीं रही और जो तुम कहो कि ब्रह्माकार वृत्ति रही और शिवजीकोभी देखा तो एक कालमें दोवृत्ति नहीं स्फुरती. इसपर एक युक्ति कहते हैं कि जैसे कोई पुरुष ज्येष्ठके महिनेमें मध्याह्नके समय गंगाजीके जलमें खड़ा था, सो जिसकालमें चरणोंकी शीतलताका अनुभव करता था उसकालमें शिरको धूपसे जलनका अनुभव नहीं करता था. और जिसकालमें शिरकी उष्णताका अनुभव करता था उस कालमें चरणोंको

शीतलताका अनुभव नहीं करता था; इससे दो विकल्प एक कालमें नहीं होते.

उत्तरः--हम पूछतें हैं कि आत्मा किसप्रकार व्यापक है?

वादी कहते हैं कि, तुमही कहो किस प्रकार व्यापक है?

उत्तरः--आत्मा ज्ञानमात्र व्यापक है. जाननेकों ज्ञान कहते हैं; इससे जाननामात्र सर्वव्यापी है. जिस कालमें शिवजीकों देखा तब जाननेमात्र साक्षी था कि नहीं था? जैसे राजा सभामें बैठा, और सभाकों देखता है तब राजा आपकों नहीं जानता क्या कि, मैं राजा हूं? अर्थात् जानताही है. इसमें अधिकता यह है कि, ये ज्ञानी हैं अज्ञानीमें विकल्प होभी जाय, परंतु ज्ञानीमें विकल्प संभवता नहीं. काहेतें कि, शरीरादिकोंका बाध करके ज्ञानस्वरूपही स्थित रहा है, कुछ जानने मात्रसे भिन्न विकल्पका संभव नहीं होता; जो तेरी दृष्टीसे हो तो देख ले. कारण ज्ञानीके विषे ऐसा कहा है-

॥निमिषार्धं न तिष्ठंति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना।

यथा तिष्ठंति ब्रह्माद्याः शुकाद्याः सनका-दयः॥ इसका अर्थ यह है, जैसे ब्रह्मादिक, शुकादिक और सनकादिक ब्रह्माकार वृत्ति विना आधी पलभी नहीं स्थित रहते हैं; सदा ब्रह्माकारही स्थित रहते हैं. और ब्रह्मादिक जगतका संपूर्ण व्यवहारभी करते हैं. इसप्रकार '**अपरोक्षानुभव**' नामा ग्रंथमें श्रीशंकर-स्वामीजीने कहा है और सिद्ध समाधिभी '**वाक्य-सुधा**' में कही है सोभी श्रवण कर. ॥ **देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि ॥ यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः॥** इसका अर्थ यह है कि, देहाभिमान निवृत्त होनेसे और ब्रह्मात्मस्वरूप जाननेसे जिनजिन विषयोंमें मन जाय तहां समाधि होय है.

यह सनकादिकोंकि ब्रह्माकार वृत्तिके निर्णयकी
नवमी युक्ति संपूर्ण हुई. ॥ ९ ॥

ॐतत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

अज्ञानी और ज्ञानीके निर्णयकी युक्ति ।

अब अज्ञानी और ज्ञानीके निर्णयकी दशमी युक्ति कहता हूं—कितनेक पुरुष आपको ज्ञानी कहते हैं और व्यवहार विपरीत वर्तते हैं. उनको कोई कुछ कहे तो वे कहते हैं कि, हम असंग हैं, अकर्ता हैं, हमकों कुछ पुण्यपाप नहीं लगता, हम ब्रह्मस्वरूप हैं. और ब्राह्मण पर तर्क करते हैं कि, ये काहेतें ब्राह्मण हैं? ब्राह्मण हम हैं और इसपर स्मृतिका प्रमाण देते हैं कि ॥ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः॥ इसका अर्थ यह है कि, जो ब्रह्मकों जानता है सोई ब्राह्मण है. ऐसा कहनेसे जाना कि उन पुरुषोंने यथार्थ विचार नहीं किया. कारण इन्होंनें देहकों ब्रह्म जाना है; इससे ऐसा नहीं जाना कि ब्रह्म चैतन्य है और असंग है सो मैं ब्रह्मचै-

तन्य हूं. जैसे इस देहविषे असंग हूं, तैसेही संपूर्ण ब्राह्मणादिक देहगेहों विषे असंग हूं. आपको अपने देह विषे ब्राह्मण मानै हैं और ब्राह्मण तो वर्णका नाम है. अपनी चिदानंदता और असंगताकों और आश्रमताको त्याग करके वर्ण धर्मवान् ब्राह्मणके धर्मको मानैं हैं, आत्माके स्वरूपकों नहीं जानते. स्वरूप तो चिडिका और गधेकाभी नहीं बिगडा, व्यवहारमात्र बिगडा है सो व्यवहारमात्रहीका सुधारना है. जैसे आकाश मोरीके जल विषेभी असंग है.

प्रश्नः—इसमें प्रमाण क्या है ?

उत्तरः—मनीषापंचकमें चंडालका रूप धारण करके शंकरस्वामिजीके उपर आक्षेप किया है. [और शिवजीनें प्रमाण कहे हैं ॥किं गंगाबुनि बिंबितेंबरमणौ चंडालवाटीपयः पूरेवांतरमास्ति कांचनघटीमृत्कुंभयोर्वांबरे ॥ प्रत्यग्वस्तुनि निस्तरंगसहजानंदावबोधांबुधौ विप्रोयं श्व-

पचोयमित्यपि महान्कोयं विभेदभ्रमः ॥ इसका अर्थ यह है कि, गंगाजलमें सूर्य प्रतिबिंबित होनेसे, तैसेही चांडालके कुंडमें चर्मके धोनेसे जो जल दुर्गंधित होवे तिस जलमें प्रतिबिंबित होनेसे क्या कुछ सूर्यका भेद है ? कुछभी नहीं. अथवा सुवर्णके घटमें और मृत्तिकाके घटमें जो अवछिन्न आकाश है तिस आकाश विषे क्या भेद है ? कुछभी नहीं. तिससे प्रकाशक परमात्मवस्तु संसाररूपी तरंगरहित स्वाभाविक आनंदसमुद्रमें यह ब्राह्मण है, यह चंडाल है, यह महान् है, ऐसा विशेषकरके भेदभ्रम क्या है ? कुछभी नहीं] इसीप्रकार शंकरस्वामिजीनें माना है.

प्रश्नः--इसमें कोई दृष्टांत कहो.

उत्तरः--**दृष्टांत** कहते हैं जैसे कोई पुरुष मूर्तिकी इच्छाकरके काष्ठका थंभा खातीके पास लेगया और कहा कि इसकी मूर्ति बना दे उस खातीनें थंभा खोदके मूर्ति बनाई. मूर्तिसे अधिक काष्ठ जो था सो छील गेरा और अंग भंग नहीं होने दिया और घडाई जो मांगी

सो दिनी. इसीप्रकारका **दृष्टांत** कहते हैं कि, मुमुक्षुरूपी पुरुषनें मूर्तिरूपी स्वरूपकी इच्छाकरके संघात (पंचीकरणात्मक शरीर) रूपी काष्ठ खातीरूपी गुरुके पास लेगया. उस खातीरूपी गुरुने विचाररूपी हथियारसे देह, इंद्रियां, प्राण, मनरूपी अधिक काष्ठको छीलनेरूपी निवृत्त किया और मूर्तिरूपी चिदानंदता उपदेश कर दीनी, और अंगभंगरूपी अस्ति[1] मात्रता नहीं क्षीण होने दीनीं. और घडावाईरूपी गुरु दक्षिणा मांगी सो गुरुदक्षिणामें अभिमानी रूपी धन दिया; इससे रूप तो किसीकाभी नहीं बिगडा. व्यवहार बिगडा है. ऐसे विपरीत धर्मवान् पुरुष उभयभ्रष्ट होते हैं.

प्रश्नः—उभयभ्रष्ट कैसे कहो हो ? इसमें प्रमाण क्या है?

उत्तरः—इसमें स्मृति प्रमाण है ॥ **गृहकर्मसमासक्तं अहं ब्रह्मेतिवादिनं ॥ कर्मब्रह्मोभयभ्रष्टं तं त्यजेदंत्यजं यथा ॥** इसका अर्थ यह है

---

१ अस्ति, जायते, वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयेत, नश्यति ये जो शरीरके छ विकार हैं इसमेंसे 'है' यहविकार.

कि, गृहकर्म (व्यवहारकर्मों) में आसक्ति है जिसकी और अहंब्रह्म (मैं ब्रह्म हूं) ऐसा कहता है सो पुरुष कर्म और ब्रह्म दोनोंसे भ्रष्ट हुवा जानना और तिस पुरुषको अंत्यज (चांडाल) की नाई त्यागना.

प्रश्नः—ज्ञान होनेसे संघात कहां जाता है?

उत्तरः—तिसही चैतन्यमें लीन होता है.

प्रश्नः—जो चैतन्यमें ऐसी मलिनताका लय होय तो चैतन्य शुद्ध कैसा ?

उत्तरः—अज्ञान कालमें चिदानंदता कर्तृत्वभोक्तृत्वादिकसंघातमें आच्छादित रहती है और ज्ञान होनेसे कर्तृत्वभोक्तृत्वादिक संघात चिदानंदतामें लीन होता है.

प्रश्नः इसमें प्रमाण क्या है ?

उत्तरः—**दृष्टांत**,सोई कहते हैं. जैसे किसी पुरुषनें काष्ठका हस्ती बनाया. उस काष्ठको पहिले कोई हस्ती नहीं कहता था. कारण हस्ती काष्ठमें लीन हो रहा था, अब उस हस्तीकों कोई काष्ठ नहीं कहता,संपूर्ण काष्ठ हस्तीमें लीन होगया. अब **दार्ष्टांत** कहते हैं. साधन-

चतुष्टयसंपन्न मुमुक्षुरूपी पुरुषनें संघातरूपी काष्ठ खोदकरके चिदानंदरूपी हस्ती निकाला. पहिले संघातरूपी काष्ठको हस्तिरूपी चैतन्य कोईभी नहीं कहताथा अब चिदानंदरूपी हस्तीमें कर्तृत्वभोक्तृत्वादिकसंघातरूपी काष्ठ लीन होगया, इससे काष्ठरूपी संघात कोई नहीं कहता; संपूर्ण ज्ञानी पुरुष हस्तिरूपी चिदानंदही कहते हैं.

प्रश्नः—तो चिदानंदकी प्राप्ति कृत्रिम हुई?

उत्तरः—कृत्रिम नहीं हुई, प्राप्ति सरीखी कहे है. जैसे किसी पुरुषके कंठमें हार था, सो विस्मरण होगया. वह पुरुष ढूंढता फिरा तब किसी पुरुषनें कहा कि तेरे कंठमें है. सो हारको देखकर प्रसन्न हुवा. फेर इसकों किसी पुरुषने पूंछा कि तेरा हार खो गयाथा सो पाया? उसी पुरुषने कहा कि, हां पाया. तब यहां जो 'पाया' कहा सो पायेकी नाई है. इसी प्रकार **दार्ष्टांत** जान लेना कि चिदानंदकी प्राप्तिकी नांई प्राप्ति कहते हैं.

प्रश्नः--जिसको इसप्रकार ज्ञान हुवा सो पुरुष जैसा चाहे तैसा वर्तै. इसपर गीताका वचन प्रमाण है.

॥यस्य नाहंकृतोभावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते॥ हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हंति न निबध्यते ॥ इसका अर्थ यह है कि, जिसको अहंकृत भाव नहीं है और जिसकी बुद्धि विषयोंसे लिप्त नहीं होवे सोपुरुष इन लोकोंको मार करकेभी आत्मदृष्टिकरके नहीं मारता है और तिन कर्मोंके फलोंकरके बंधनको नहीं प्राप्त होता है. यहां शेषजीका वचनभी प्रमाण है ॥हयमेधसहस्राण्यथ कुरुते ब्रह्मघातलक्षाणि परमार्थविन्न पुण्यैर्न च पापैः स्पृशते विमलः॥ इसका अर्थ यह है कि, ज्ञानी सोसहस्र यज्ञ करे अथवा लक्ष ब्राह्मणोंको मारे, तोभी मायारूपी मलकरके रहित होनेसे तिनके पुण्य और पापोंकरके स्पर्श नहीं किया जाता अर्थात् उसको पुण्य पाप नहीं लगता.

उत्तरः—तूने जो कहा सो सत्य है, परंतु यहां शास्त्र कहते हैं सोभी श्रवण कर॥ तेषां वचनानां विद्वत्स्तुतिपरत्वेन तत् कर्तव्यमित्यत्र तात्पर्याभावात्॥ इसका अर्थ यह है कि, तिन वचनोंको

ज्ञानीकी स्तुतिपरत्व है ऐसा जानना. कारण तिन वचनोंका अश्वमेध यज्ञादिक वा ब्रह्महत्यादिक करना, इसके उपर तात्पर्य नही अर्थात् तिन वचनोंसे ज्ञानीकी स्तुति की जाती है. "**तदुक्तमाचार्यैः**" सोई आचार्योंने कहा है॥ **अधर्माज्जायतेऽज्ञानं यथेष्टाचरणं ततः॥ धर्मकार्यं कथं तत्स्याद्यत्र धर्मोऽपि नश्यति**॥ इसका अर्थ यह है कि, अधर्मसे अज्ञान होय है; तिस अज्ञानसे जैसी इच्छा होय तैसा वर्ते. जहां धर्मभी नाश होता है तहां धर्मकार्य किसप्रकार होय. नैष्कर्म्य सिद्धिविषेभी कहा है॥ **बुद्धाद्वैतसतत्त्वस्य यथेष्टाचरणं यदि॥ शुनां तत्त्वदृशां चैव को भेदोऽशुचिभक्षणे**॥ इसका अर्थ यह है कि, जाना है अद्वैत आत्मस्वरूप जिसने तिसके जो यथेष्टाचरण होय अर्थात् जैसी इच्छा होय तैसा वर्ते तो कुत्तोंको और ज्ञानियोंको जूंठ आदि भोजन करने विषे क्या भेद है? कुछभी नहीं. औरभी

ष्कर्म्य सिद्धिविषे कहा है ॥ रागो लिंगमबोध·
स्य चित्तव्यायामभूमिषु ॥ कुतः शाड्वलता
ग्र यस्याग्निः कोटरे तरोः ॥ इसका अर्थ
कि, चित्तके फैलनेकी जो भूमी (शब्द–स्पर्श–
रस–गंधादिकोंके विषे जो प्रीति होवे) सो
नका चिह्न है. यहां दृष्टांत कहते हैं, जिस वृक्षको
; नीचे अग्नि होय तिसकों हर्याली कहां. यातें
साधनोंकरके ज्ञान हुवा वेही साधन स्वरूप-
रहे हैं.

प्रश्नः--इसका प्रमाण कहां है?

उत्तरः--स्मृतिमें कहा है ॥ तदानीममानित्वा-
ानि ज्ञानसाधनानि अद्वेष्टृत्वादयः सद्गुणा
श्चालंकारवदनुवर्तंते ॥ इसका अर्थ यह है कि,
तिस ज्ञान अवस्थामें अमानित्वादिक ज्ञानके साधन;
और अद्वेष्टृत्वादिक श्रेष्ठ गुण भूषणोंकी नांइ वर्त्ते हैं
यहां वार्तिककारकीभी संमती कहते हैं॥उत्पन्नात्मा-

प्रबोधस्य अद्वेष्टृत्वादयो गुणाः ॥ अयत्न
तो भवंत्यस्य नतु साधनरूपिणः॥इसका अ
यह है कि, उत्पन्न हुवा है आत्मज्ञान जिसकों ति
पुरषकों अद्वेष्टाइत्यादि (किसीकों वैर न करना उ
गुण जो गीतामें साधन कहे हैं तिन स
विना और यत्नके विना भी तिसकों होते हैं.

यह अज्ञानी और ज्ञानीके निर्णयकी दशमी
युक्ति संपूर्ण हुई ॥ १० ॥

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

विराटके निर्णयकी युक्ति ।

ब विराटके निर्णयकी एकादशी युक्ति कहता सिद्धांती विचारकी और युक्ति कहते हैं. कि, रूप ऐसा है जिसके एक एक रोमकूपमें अनंत ब्रह्माण्ड उडें हैं. और एकसे एक नहीं मिलता, चैतन्यके एकदेशमें कल्पित हैं. काहेतें मायाका स है; इससे जब विचारसे विराटका अज्ञान सहित व हुवा तब पूर्ण महान् शुद्ध चैतन्य रहा.

प्रश्नः--इसमें प्रमाण कहो. महान् कैसे है और न्य कैसे हैं ?

उत्तरः--श्रुति कहती है ॥ महतो महीयाति ॥ इसका अर्थ महानसे महान् है. और स्मृ-भी कहती है ॥ एकोविशुद्धबोधोहमितिनि-श्चयवह्निना॥ प्रज्वाल्याज्ञानगहनं वीतशोकः

सुखी भव ॥ इसका अर्थ यह है कि,हे शिष्य ! तूं, मैं एक विशेष शुद्ध ज्ञानस्वरूप हूं ऐसा निश्चय करके, उस निश्चयरूपी अग्निकरके अज्ञानरूपी वनको जला कर शोकरहित सुखी हो.

प्रश्नः—तुमनें चैतन्य महानसें महान् कहा सो बनता. कारण जैसे सर्प रज्जूका आवरण करत परंतु रज्जुहीके समान है. जो रज्जू सर्पसे बडी हो एक देशमें सर्प दीखें, और शेष रज्जु दीखे और तुम अंधेरेका दृष्टांत न मानो, तो प्रकाशकाभी व हूं. जैसे रूपा सर्वसीपीकों आवरण करते हैं महानसे महान तो नहीं संभवता.तो विराटके तुल्यह

उत्तरः—सुनरे वादी ! इस बुद्धिके सन्मुख अ मेरे अभिप्रायको नहीं समझा. मैनें सिद्धांत कहा और तूने अध्यारोपमें आशंका करी. अस्तु तो श्रवण कर. जैसे रज्जूके अज्ञान कालमें रज्जू प्रमाण भान होता है परंतु सर्प है नहीं; कारण रज्जूका अज्ञ नष्ट होनेसे समग्र रज्जुही है; सर्पका खंडभी नहीं र तैसेही आत्माके अज्ञानसें संपूर्ण आच्छादित सरीख

भान होय है. अज्ञानके नष्ट होनेसे पूर्ण आत्माही शेष रहा है, विराटका अंकुरभी नहीं रहता. जैसे रज्जू विषे सर्प कल्पित है तैसेही आत्मा विषे विराट कल्पित है. और प्रकार भी उत्तर कहते हैं. जैसे कूंडभरे जलमें थोडासा रेत सारेजलकों मलिनता करे है परंतु जलके तुल्य रेत नहीं होता. जब ज्ञानरूपी निर्मली डालिये तब अज्ञानरूपी रेत निवर्त्त होता है. निर्मल जलस्थानी शुद्धस्वरूपही रहते हैं.

प्रश्नः—ऐसा माननेसे द्वैतापत्ति हुई. एक आत्मा रहा और एक ज्ञान रहा यातें सिद्धांत नहीं बना.

उत्तरः—सुन रे भाई! अद्वैतही सिद्धांत हुवा है अज्ञानरूपी रेतकों ज्ञानरूपी निर्मली निवृत्त करके ब्रह्मरूपी जलमें आपभी लय होती है.

यह विराटके निर्णयकी एकादशी युक्ति संपूर्ण हुई ॥११॥

ॐ

षट् शास्त्रके वादकी युक्ति।

अब षट् शास्त्रके वादकी द्वादशी युक्ति कहता हूं.- एक समय षट्[1] शास्त्र वादियोंकी सभा हुई. तिनमें **वेदांतीने** प्रश्न किया कि, सार वस्तु क्या है? तब **पातंजलवाला** बोला कि, निरोध भूमिमें चित्तकों लय करके जीवात्माकों परम सुख भुगावनां सोई सार है यह कहा.

प्रश्नः—वेदांतीका प्रश्न तुम्हारे मतका साधन क्या है? और मोक्ष क्या है?

उत्तरः—यमकों[2] आदि लेकर निर्विकल्प समाधी पर्यंत

---

१ वेदांती, पातंजली, नैयायिक, मीमांसक, वैशेषिक और सांख्य ये छ शास्त्र. २ यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधी. इन्होंका लक्षण अंतिम युक्तिमें कहा जायगा.

आठों अंग साधन हैं और पंच क्लेशोंकी निवृत्तिकों मोक्ष कहते हैं.तब नैय्यायिक बोला जीव तो जड है.

प्रश्नः--पतंजलवादीका किसप्रकार (जीव) है ?

उत्तरः--जड है और विभु है.

---

१ "अविद्याऽस्मिता रागद्वेषाभिनिवेशाः पंच क्लेशाः" अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश यह पांच क्लेश हैं. इन्होंका स्वरूप कहते हैं.

अविद्या- "अनित्याऽशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या" देवोंका आयुष्य एक कल्प पर्यंत है अधिक नहीं तोभी अमर (मृत्युरहित) नाममात्रसे अनित्य देवशरीरमें नित्यत्वकी भ्रांति होवे और तिस करके देवत्व प्राप्तिकेवास्ते कर्मकरके बद्ध होना, स्त्री आदिकोंके अपवित्र शरीरमें पवित्रत्व भ्रांतिकरके बद्ध होना, परिणाममें दुःख देनेवाले भोगमें सुखत्वकी भ्रांति, और आत्मभिन्न बुद्धिआदिकोंमें आत्मबुद्धि होना यह अविद्या है.

अस्मिता-" दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता " दृक्शक्ति वह पुरुष; और दृश्यते अर्थात् भोगी जाती है वह दर्शनशक्ति बुद्धि. (यहां शक्ति शब्द योग्यताका बोधक है) भोक्तृत्व और भोग्यत्व इन्होंको योग्य होनेवाली और परस्पर अत्यंत भिन्न जो दृक् और दृश्य इन्होंकी अवि-

ध्याकरके की भयी जो एकात्मता (तादात्म्य अथवा एकीभाव) को अस्मिता कहते हैं. ब्रह्मवेत्ते लोक इस अस्मिताको हृदयग्रंथि कहते हैं.

राग–"सुखानुशयीरागः" कोई सुखका अनुभव हुआ. फेर उस सुखकी स्मृति होकर तिस सुख सरिखे अन्यसुखविषे किंवा सुखका-जो साधन तिनविषे जो तृष्णा (उत्कट इच्छा) सो राग जानना.

द्वेष–"दुःखानुशयी द्वेषः" दुःखका अनुभव किया है जिसने ऐसे पुरुषको दुःख स्मरण हुआ पिछे दुःख और दुःखोंके साधनोंपर जो क्रोध होता है सो द्वेष जानना.

अभिनिवेश–"स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः" विद्वान अथवा मूर्ख सब प्राणीओंको मृत्युसे जो त्रास होता है सो अभिनिवेश जानना. जैसे मूर्खकों मैंने सर्वकाल रहना ऐसी इच्छासे आपका भावी (आगे होनेवाले) नाशसे जो त्रास होता है सो प्रसिद्धही है. तैसे विद्वान्कोही यह त्रास प्रसिद्ध (प्रत्यक्ष) दीखता है; कारण सो स्वरस-वाही (पूर्व जन्ममें अनेक बखत भये हुए मरणदुःखके अनुभवसे उत्पन्न भयीं जो वासना (संस्कार) तिन्होंका जो समुदाय सो स्वरस. उस स्व-रसकरके वहन करता है अर्थात् प्रवाहरूपसे रहता है इसवास्ते स्वरस-वाही) कहा जाता है. इस अभिनिवेशरूप भयका ज्ञान होनेसे आत्मा देहसे भिन्न है यह भाष्यमें वेदव्यासजीने प्रसंगसे दिखाया है. जैसे बालक उत्पन्न हुए पीछे उसको मरणसे भय होता है यह प्रसिद्ध है. सो भय पूर्व मरणके स्मरण विना उत्पन्न नहीं होसकता. यह अविद्यादिक पांच क्लेशोंको अनुक्रमसे तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अंधतामिस्र ऐसे कहते हैं.

प्रश्नः--पतंजल वादीका कहना तुम्हारे कहनेमें भी नहीं बना. कारण जो जड है सो कर्ता, भोक्ता और विभु किसप्रकार होय.

उत्तरः—रे वादी! श्रवण कर. जब पूर्व कर्म मनकों प्रेरता है तब मनका और आत्माका संयोग होता है, तब आत्मा ज्ञानगुणी होता है. मनके विना आत्मा जड है. जब ज्ञानगुणी हुवा तब कर्ता, भोक्ता और विभु हुवा.

प्रश्नः—पतंजल वादीके कहनेमें तुम्हारा क्या मत है और मोक्ष क्या है?

उत्तरः--शम[१]दमादिक साधनों करके ईश्वरके सन्मुख हो करके सुखकों प्राप्त होता है. तब राजा पुरोहितकी नाई आत्मा सुखकों प्राप्त होता है और इकीस दुःखोंकी निवृत्तिकों मोक्ष कहते हैं. यही सार है.

---

१ "शमदमोपरतितितिक्षासमाधानश्रद्धाः" शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा. इन्होंका लक्षण अनुक्रमसे कहते हैं.

प्रश्नः-इकीस दुःखोकूं न सहै है वह दुःखों कौनसीं?

शम–"श्रवणादिव्यतिरिक्तविषयेभ्यो मनोनिग्रहः" ईश्वर विषयक श्रवण, मनन, निदिध्यासनसे भिन्न जो अन्य विषय तिन्होंसे मनका हटा लेना वह **शम** कहाता है.

दम--"बाह्येंद्रियाणां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्यो निवर्तनम्"श्रोत्रादि बाह्यें-द्रियोंका ईश्वर विषयक. श्रवणादिसे भिन्न विषयोंसे हटा लेना, **दम** कहाता है.

उपराति--"निवर्तितानामेतेषां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्य उपरमणमुप-रतिः ॥ अथवा विवितानां कर्मणां विधिना परित्यागः" तद्व्यतिरिक्त (ईश्वर विषयोंसे भिन्न) जो विषय तिन्होंसे हटाई हुई बाह्य इंद्रियोंका दमन करना अथवा विधिवाक्योंसे विहित कर्मोंका विधिपूर्वक परित्याग **उपराति** कहाता है.

तितिक्षा–" शीतोष्णादिसहिष्णुता " शीतउष्णता, सुख दुख, इत्यादिकोंके सहन करनेको **तितिक्षा** कहते हैं.

समाधान--" निगृहीतस्य मनसः श्रवणादौ तदनुगुणविषये च समाधिः समाधानम् " ईश्वर विषयक श्रवणादि अथवा तत्सदृश और विषयोंद्वारा निगृहीत मनकी एकाग्रता अवस्थाका नाम **समाधान** है.

श्रद्धा–" गुरुवेदांतवाक्येषु विश्वासः श्रद्धा " गुरुके वचनोंमें तथा उपनिषदादि वेदान्त शास्त्रके वाक्योंमें विश्वास करना **श्रद्धा** कहाती है.

उत्तरः–॥ **शरीरं षडिंद्रियाणि षड्विषयाः षड्विषयज्ञानानि सुखं दुःखं चेति** ॥ इसका अर्थ यह है कि, शरीर, कर्ण, त्वचा, चक्षु, रसना, नासिका और मन; शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध; और विषयोंकी इंद्रियोंको प्राप्ति कर देना यह मनका विषय; और यह शब्दादि छ विषयोंका पृथक् पृथक् छ प्रकार ज्ञान; सुख और दुःख मिलकर इक्कीस दुःखों हुई.

प्रश्नः–शरीरादिकोंको दुःखरूपता कैसी.

उत्तरः–दुःख संबंध होनेसे गौणरूपता है. तब **मीमांसक** बोला कि तुम्हारा ईश्वर स्वतंत्र है कि परतंत्र है ?

तब **नैयायिकने** उत्तर दिया कि, ईश्वर स्वतंत्र है और सर्व शक्तिमान है.

फेर **मीमांसकने** कहा ऐसा नहीं बनता. जीव स्वतंत्र है और ईश्वर परतंत्र है, कारण जीव अपनी इच्छाकरके कर्म करता है; चाहै तो पुण्य कर्म करे चाहै

तो पापकर्म करे; इससे कर्मोंके करनेविषे जीव स्वतंत्र है, और ईश्वर कर्मोंका फल देने विषे परतंत्र है; कारण जीव जैसा कर्म करे तैसा ईश्वर साक्षीरूपसे फल देता है. इसवास्ते कर्मही मुख्य है, और कर्म करके जगतकी उत्पत्यादि कही है.

प्रश्नः—तुम्हारे मतमें क्या कर्तव्यता है और क्या मोक्ष है ?

उत्तरः--हमारे मतमें ऐसा कहा है कि, विधिपूर्वक यज्ञादिक कर्म करके जब स्वर्गादिककी प्राप्ति होय, तब दुःखरहित सुखकों भोगता है. जब कर्मोंका फल हो चुका तब मर्त्यलोकमें आयकर विचार करे है कि, कर्मोंकरके दुःखरहित सुख भोगा. अब कोई ऐसा कर्म करना चाहिये कि, जिस कर्म करके अक्षय सुख भोगनेकूं मिले. दुःखरहित सुखकों मोक्ष कहते हैं; यातें कर्मही सार है.

यह सुनकर **वैशेषिक** वादी बोला कि, तुम्हारे कर्मोंका फल कुछ शेषभी रहा है ?

उत्तरः—कर्मोंका फल अनेकप्रकारका भोगना रहा है.

प्रश्नः—तो भोगता क्यों नहीं ?

उत्तरः—समय आवे तब भोगेंगे.

वैशेषिक वाला कहता है तो कर्मोंका फल हमारेही आधीन है.

प्रश्नः—मीमांसक पूछता है तुम्हारा क्या मत है और किसप्रकार मोक्ष है ?

उत्तरः--हम कालवादी हैं. कालकों नित्य माने हैं और अखंड मानते हैं यहि हमारे मतमें मोक्ष है और यही सार है.

तब **सांख्यवादी** बोला कि, काल तो प्रकृतिकों आधार है, प्रकृतिविषे स्फुरे है, अनित्य है और क्षणिक है; कारण भूत भविष्यत् और वर्तमान तीन भागकरके बर्ते है और भूतकालादिक भिन्न भिन्न है यातें क्षणिक हैं और प्रकृति श्रेष्ठ है.

प्रश्नः--हे वैशेषिक ! तुम्हारा क्या मत है और मोक्ष क्या है ?

उत्तरः--हमारे मतमें चोवीस तत्व मायाके और

पच्चीसवां पुरुष असंग है मायाही जगतके आकाररूप परिणामको प्राप्त हुई है. जगतकी उत्पत्ति और स्थिति और लयका कारण मायाही है; इसीकों मोक्ष कहते हैं, और यही सार है.

तब **वेदांती** बोला कि, माया तो जड है. चैतन्य विना स्वतः मायाका परिणाम नहीं संभवता. जैसे कुंभारकेविना घटका आकार नहीं होता; इससे तुम्हारा मत नहीं बना. और तुम्हारे पांचोंके मतमें सार नहीं पाया. और मोक्ष आकाशपुष्पकी नाई कथनमात्र है, कारण, तुम्हारे सबोंके मतमें मोक्ष पंचकोशोंके अवांतर है.

प्रश्नः—**सांख्यवादी** पूछता है. तुम्हारा क्या मत है? और मोक्ष क्या है?

उत्तरः—श्रवण करो. हमारा एक जीववाद है. और नित्यानित्य वस्तुविवेकादि चारों साधनों करके संपन्न मुमुक्षु संसार दुःखकी निवृत्तिके अर्थ श्रोत्रिय[1] ब्रह्मनिष्ठ[2]

---

१ जिसने यथाशास्त्र वेदाध्ययन किया है सो. २ निर्गुण ब्रह्ममें सर्वकाल जिसकी निष्ठा (सिद्धि) हुई है सो

गुरुकों प्रश्न करे, तब सद्गुरु श्रवण, मनन और निदिध्यासनद्वारा तीनों शरीरों[1]से विलक्षण, पंचकोशों[2]के पर तीनों अवस्थाओं[3]का साक्षी, सत्‌चित्‌आनंदस्वरूप तूंही है ऐसा उपदेश करे तब संसार दुःखकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्ति होय इसीकों मोक्ष कहते हैं. यही सार है.

प्रश्नः—इसमें प्रमाण क्या है?

उत्तरः—वेद प्रमाण है. जैसे " तत्त्वमसीति श्रुतिः "

अस्यार्थः " तद्ब्रह्म त्वं असि" इसका अर्थ सो ब्रह्म तूं है.

प्रश्नः—ऐसे मुखमात्रके कहनेसे ब्रह्म नहीं होता?

उत्तरः—रे वादी! तुम्हारा कहना सत्य है. अभी सुनो. तत्पदका और त्वंपदका वाच्यार्थ त्याग करके लक्ष्यार्थ विषे एकता होय है इसकों जहद्जहल्लक्षणा कहते हैं.

इस सिद्धांतकों श्रवण करके **शून्यवादी** बोला

---

१ स्थूल, सूक्ष्म, कारण. २ अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय. ३ जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति.

अच्छा ठीक. जो सिद्धांत किया तो बीचमेंही पडे लटके हो. थोडे और बोलो तो मेरे सुखकों प्राप्त होवेंगे. काहेतै संपूर्णका अभाव करके, एक चैतन्य शेष मान लिया; इससे अर्ध नास्तिक हुवा. अच्छा सर्वके अभावमें शेष कहां रहे हैं. इतनाही मेरा सिद्धांत मान ले. जब अभावही सिद्ध करेगा तब मोक्षकों प्राप्त होयगा.

तब **सिद्धांती** कहता है, रे मूढ ! सुन. तेरी आधारपर दृष्टि नहीं जाती है. जो चैतन्य शेष न रहे तो अभाव सिद्ध कौन करे? यातें भाव और अभावका साक्षी है.

प्रश्नः—साक्षी रहतेही अभाव होवे ?

उत्तरः—साक्षीके विना अभाव नहीं बनै है. काहेतें अभावका करनेवाला चैतन्य है सोई शेष रहता है. इस्पर एक युक्ति कहते हैं. किसी पुरुषनें घरकी सर्व सामग्री काढ कर बाहर गिरा दीनी. दूसरे पुरुषनें पूछा कि, इस घरमें कुछ और भी है? भीतरवालेनें

कहा, इस घरमें कुछ भी नहीं है. बाहरवालेनें कहा कि कुछ नहीं क्यों कहते ? इस घरमें तूं तो है. इससे अभावका साक्षी चैतन्य सिद्ध हुआ.

यह षट्शास्त्रके वादकी द्वादशी
युक्ति संपूर्ण हुई ॥ १२ ॥

ॐ

बुद्धि और कर्मके निर्णयकी युक्ति ।

अब बुद्धि और कर्मके निर्णयकी त्रयोदशी युक्ति कहता हूं–

सिद्धांती कहता है, बुद्धि किसको आश्रय है और किसकरके परिणामकों प्राप्त होती है ?

वादी कहता है, बुद्धि चैतन्यको आश्रय है अथवा अज्ञानको आश्रय है.

तहां सिद्धांती कहता है जो बुद्धि चैतन्यको आश्रय होय तो विपरीत क्यों वर्ते. और जो अज्ञानके आश्रय होय तो व्यवहार सिद्ध नहीं होना चाहिये.

प्रश्नः--तहां वादी कहता है कि तुमही कहो बुद्धि किसको आश्रय है.

उत्तरः--सिद्धांती कहता है, कर्मको बुद्धि है; काहेतैं कर्मोंके अनुसार बुद्धि वर्ते है; और देहकरके बुद्धि परिणामकों प्राप्त होय है. पश्वादिकों विषेही देखिये है

प्रश्नः--कर्म जड है कि चैतन्य है ?

उत्तरः--कर्म जड है.

प्रश्नः--जो कर्म जड है तो जड कर्म बुद्धिकों चेष्टा किसप्रकार करता है?

उत्तरः--जडकोंभी जड चेष्टा करता है; जैसें बडा वेगवान वायु वृक्षकों कंपावे है.

प्रश्नः--कर्म किसको आश्रय है ?

उत्तरः--कर्म चैतन्यको आश्रय है.

प्रश्नः--जो चैतन्यको आश्रय कर्म है तो बीचमें कर्म क्यों लाया. हमनें कहाथा चैतन्यको आश्रय बुद्धि है सो तुमनें चैतन्यही आश्रय माना. तुम्हारा कहना ऐसा हुवा जैसे–कोई पुरुषपर चढा हुवा घासका गट्ठा शिरपर धर रहा है किसीने पूंछा घास शिरपर क्यों धरी?उसने कहा घोडी ग्याभन है इससे बोझ नहीं लादा.

उत्तरः–जो हम कर्तव्यता न मानें तो कर्म उपासना ज्ञान नहीं बने. कर्मादिक नहीं बनें तो वेदकों व्यर्थता आवे है इससे कर्म मान.

प्रश्नः--तो कर्म विपरीत क्यों वर्ते है?

उत्तरः--अज्ञानोपहित चैतन्य है इससे विपरीतता है. जैसे—मदिरा करके संयुक्त पुरुष विपरीत वर्ते.

प्रश्नः--इसमें प्रमाण क्या है?

उत्तरः—वेद प्रमाण है ऐसा वेदमें कहा है. **दृष्टांत** एक कलालने मदिरा बनायके स्त्रीसे कहा कि, मैं मदिरा पिऊं हूं जो बेसुध होऊं तो मुझे खटाई दीजियो. सो मदिरा पीकर विपरीत वर्तने लगा; जब स्त्रीनें खटाई दीनी तब सुधमें आया. **दार्ष्टांत** कहते हैं. चैतन्यरूपी कलाल अविद्यारूपी मदिराकों बनाय करके बुद्धिरूपी स्त्रीकों कहा कि, मैं अविद्यारूपी मदिरा पिऊं हूं. जो मैं मोहरूपी बेसुध होऊं तो "**तत्त्वमस्यादिक**" वाक्यों-का विचाररूपी खटाई दीजियो, जिससे ज्ञानरूपी सुधकों प्राप्त होऊंगा. सो मदिरारूपी अविद्याकों ग्रहण करता भया इससे विपरीतता रूपी कर्तव्यताकों प्राप्त होता भया. जब बुद्धिरूपी स्त्रीनें विचाररूपी खटाई दीनी तब सुधरूपी ज्ञानकों प्राप्त हुवा.

प्रश्नः—तुम्हारा दार्ष्टांत नहीं बनता; काहेतैं, अविद्या अनादि, अजन्मा न रही.

उत्तरः—आत्मा सबका कारण है यातें अविद्याकाभी कारण है

प्रश्नः—इसमें प्रमाण क्या है?

उत्तरः—शारीरक भाष्यमें कहा है॥**ह्यात्मा वै सर्वकारणम्**॥ इसका अर्थ यह है कि, (हीति निश्चयेन) निश्चय करके आत्माही संपूर्णका कारण है.

प्रश्नः—जो चैतन्यके आश्रय कर्म विपरीत वर्ते हैं तो चैतन्यके कर्मका आश्रय बुद्धिही विपरीत वर्ते. ऐसा बने हैं परंतु कर्मकी हठ करोहो ऐसा न चाहिये.

उत्तरः--कर्मोंविना प्रकरण नहीं संभवता. नरक और स्वर्गादिकका गमनादिक न बनेंगा और बंधमोक्षकी व्यवस्था नहीं बनेगी. इससे बुद्धि चैतन्यको आश्रय नहीं बने है. यातें बुद्धिकों पुरुषार्थरूपी कर्तव्यता करके ज्ञान होय है तब अज्ञान नाश होय है. पश्चात् कर्म और बुद्धिका अभाव होय है.

प्रश्नः—तुम्हारा सब कहना व्यर्थ हुवा. काहेतैं, कारणका नाश होनेसे कार्य नहीं रहे हैं. जैसे तंतूका नाश होनेसे पट नहीं रहता.

उत्तरः—तेरा कहना असत्य है. कारणका नाश होनेसे कार्यभी रहता है जैसे रज्जुविषे सर्पका भ्रम निवर्त होनेसे भय करके उत्पन्न हुवा कंपादिक रहता है इस प्रकार लोकविषे प्रसिद्ध है.

यह बुद्धि और कर्मके निर्णयकी त्रयोदशी
युक्ति संपूर्ण हुई ॥ १३ ॥

ॐ

सूक्ष्म विचारकी युक्ति।

अब अणुआत्माके निर्णयकी चतुर्दशी युक्ति कहता हूं.—

प्रश्नः—आत्मा तुमनें कैसा सिद्ध किया है?

उत्तरः—अस्ति मात्र सिद्ध किया है.

प्रश्नः—जो अस्तिमात्र है तो क्यों नही भान होवे?

उत्तरः—आत्मा सूक्ष्म है.

प्रश्नः—इसका प्रमाण क्या है?

उत्तरः—॥अणोरणीयान्॥ ऐसी श्रुति है. इसका अर्थ यह है कि, आत्मा अणुसे अणु है और दूसरी श्रुति है. ॥एषोणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः॥ इसका अर्थ यह है, यह सूक्ष्म आत्मा चित्तकरके जानवेकों योग्य है.

प्रश्नः—तो आत्मा एकदेशावछिन्न हुवा.

उत्तरः—तेरा कहना नहीं बने है. कारण, आत्मा व्यापक है.

प्रश्नः--अणु व्यापक किस प्रकार होवे? तुम कहते हो अणुरूप होकर आत्मा व्यापक है सो संभवता नहीं. जैसे किसी पुरुषनें गंगामें गोता मारा,संपूर्ण शरीरकी शीतलताका अनुभव किया. जो अणुरूप होता तो अणु प्रमाण शरीरमें शीतलताका अनुभव करता; तिससे अणु प्रमाण कहना नहीं बनता. इससे शरीर प्रमाण आत्मा है.

उत्तरः—रेवादी! सुन. जो देह प्रमाण आत्मा होय तो हस्तीका आत्मा चींटीके देहमें प्रवेश करे तब चीटीमात्र तो चैतन्य होवे और बाकी ढेर बाहर पडा चाहिये अथवा चींटिका आत्मा हस्तीके देहमें प्रवेश करे तब चींटी प्रमाण तो चैतन्य होवे बाकी जड होय, ऐसा तो नहीं दीखता; इससें अणुमात्रही है.यहां **दृष्टांत** कहते हैं. जैसें देहके एक देशमें चंदनका बिंदु अणुमात्र होय परंतु सो संपूर्ण देहमें शीतलताका अनुभव करता है तैसेंही अणुमात्र सिद्ध हुवा.

प्रश्नः--इसका प्रमाण कहो.

उत्तरः--यहां व्यासजीका सूत्र प्रमाण है ॥**अविरोधश्चंदनबिंदुवत्**॥ इसका अर्थ--**दृष्टांत** जैसें शरीरके एक देशमें स्थित चंदनबिंदु सर्व शरीरव्यापी सुखकों जनावे है. **दार्ष्टांत** तैसेही जीवभी देहव्यापी शीतलतादिकका अनुभव करे है यहां अविरोध अर्थ है.

प्रश्नः--जो चित्त करके आत्मा देखाजाय तो चित्त द्रष्टा हुवा और आत्मा दृश्य हुवा. चित्तकों आत्मता आई. और चित्तकरके आत्मता जानी तिससे हमने चित्तकोंही आत्मा माना. तुम्हारा आत्मासे क्या प्रयोजन है ?

उत्तरः--कुछ नहीं ऐसा तेरा कहना बनता है. इसपर **दृष्टांत** कहते हैं, जैसें सूर्यका समान अंश नेत्रोंमें है और विशेष अंश सूर्य आप है,परंतु नेत्रकी मलिनतासे तिससमान अंशसे विशेष अंश नहीं दीखता. जब नेत्रकी मलिनता अंजन लगानेसे दूर होवे तब सामान्य अंश अपने विशेष अंशको देखता है. **दार्ष्टांत** कहते

हैं. सूर्यरूपी ब्रह्मका सामान्य अंश नेत्ररूपी बुद्धिमें जीव है; और विशेष अंश ब्रह्म है. परंतु नेत्ररूपी बुद्धिकी मलिनतासे अपने विशेष अंश ब्रह्मकों नहीं देख सके हैं; जब नेत्ररूपी बुद्धिकी श्रवणादिक विचाररूपी अंजन करके मलिनतारूपी अविद्या निवृत्त होवे तब सामान्य अंशरूपी जीव अपने विशेष अंशरूपी ब्रह्मकों देखे है.

प्रश्नः—इसमें तुम्हारा अद्वैत सिद्धांत नहीं हुवा; कारण, जब नेत्रके सामान्य अंशने विशेष अंश सूर्यकों देखा तब घटपटादिककोंभी देखा.

उत्तरः—रे वादी ! श्रवण कर. जब नेत्रके सामान्य अंशने विशेष अंश सूर्यकों देखा तब अखंडाकार वृत्ति हुई. फेर जिधर देखा उधर सूर्यही दीखा. ऐसेही दार्ष्टांत जानले. यातें अद्वैत सिद्धांत हुवा.

यह अणुआत्माके निर्णयकी चतुर्दशी

युक्ति संपूर्ण हुई ॥ १४ ॥

ॐ

वैराग्यकी युक्ति।

अब वैराग्यके निर्णयकी पंचदशी युक्ति कहता हूं— साधनचतुष्टयकरके संपन्न जो पुरुष होय तिसको संन्यासका अधिकार है; सो संन्यासकी वैराग्य परम अवधि है सो संन्यासी तारतम्यताके भेदकरके चार प्रकारका होताहै. जैसे—कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस. और सो वैराग्यभी दोप्रकारका है. पर और अपर. अपर वैराग्यके चार भेद कहे हैं. यतमान, व्यतिरेक, एकेंद्रियत्व और वशीकार.

अब **यतमानका** स्वरूप कहते हैं. एकांत बैठके सारासार वस्तुका विचार करे इस जगतमें सार क्या है और असार क्या है सोई यतमान है.

व्यतिरेकका स्वरूप कहते है. ऐकांत बैठके अपने चित्तमें देखे कि, मेरे चित्तके इतने कषाय परि-

पाक हुयेहैं और इतने नहीं हुए ऐसा विचार करके जे नहीं परिपाक हुए तिन्होंको दोषदृष्टि करके निवृत्त करे सो व्यतिरेक है.

अब **एकेंद्रियत्वका** स्वरूप कहते हैं. विषयोंकी इच्छा होनेसे भी मनकरके इंद्रियोंका रोकना सो एकेंद्रियत्व है.

अब **वशीकारका** स्वरूप कहते हैं॥ **ऐहिकामुष्मिकविषयजिहासा** ॥ इसका अर्थ कहते हैं. इस लोकके और परलोकके विषयोंका त्याग करे सो वशीकार है; सो वशीकार तीन प्रकारका है. **मंद, तीव्र** और **तीव्रतर.** स्त्री पुत्रादिकोंके वियोगसे धिक् संसार है इस बुद्धि करके विषयोंको त्यागे सो **मंद** वैराग्य है. इस जन्ममें पुत्रादिक मत हो. इस स्थिर बुद्धि करके विषयोंका जो त्याग सो **तीव्र** है. फेर आपने सहित ब्रह्मलोकादिपर्यंत मत हो इस स्थिर बुद्धिककरे विषयोंका जो त्याग सो **तीव्रतर** है. मंद वैराग्यमें संन्यासका अधिकार नहीं है. तीव्र वैराग्य होनेसे फिर-

नेकी शक्ति नहीं हो तो कुटीचकं संन्यासका अधिकार है. जो फिरनेकी शक्ति हो तो बहूदक संन्यासका अधिकार है. तीव्रतर वैराग्य होनेसे हंस संन्यासका अधिकार है और कुछ कहे हैं. तीव्रतर वैराग्य होनेसे मुमुक्षुकों परमहंस संन्यासका अधिकार है. सो परमहंस संन्यास दो प्रकारका है; एक **विविदिषा** संन्यास और दूसरा **विद्वत्संन्यास** है. साधनसंपन्न होनेसे तत्व ज्ञानकी इच्छा करके करनेको जो योग्य संन्यास सो **विविदिषा** संन्यास है. गृहस्थाश्रमादिकोंमें श्रवणादिकों करके उत्पन्न हुवा ब्रह्मसाक्षात्कार, संन्यासादिक करके चित्तकी विश्रांति, जीवन्मुक्तिके उपदेश, इन्हों‑करके करनेको योग्य जो संन्यास सो **विद्वत्संन्यास** है. इसहीकों पर वैराग्य कहते हैं.

यह वैराग्यके निर्णयकी पंचदशी युक्ति
संपूर्ण हुई ॥ १५ ॥

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः।

निषेधद्वारा ज्ञान होनेकी युक्ति।

अब निषेधद्वारा ज्ञान प्राप्त होनेकी षोडशी युक्ति कहता हूं—**दृष्टांत** कहते हैं. कोई पुरुषनें किसी पुरुषकों विनती करी कि, हे महाराज! जिस करके मेरा कल्याण होवे ऐसा कोई उपाय कहो. तब उस पुरुषनें कहा कि, तू भूमियाका पूजन किया कर. और इतनी वार्ता विचार लीजो कि, जो बलवान् होता है सोई कल्याण का दाता है. ऐसा श्रवण करके वह पुरुष भूमियांकी उपासना करने लगा और पदार्थ भोजनादिक भेट चढाया करे. एक दिन जो देखा तो उस भोजनको चूहा खावे है. तब उस पुरुषनें विचार किया कि, भूमियासे तो चूहा बलवान् है; कारण भूमियांका भोजन चूहा खावे है और भूमियां कुछ नहीं कह सकता. तब वह पुरुष चूहेकी उपासना करने लगा. कारण चूहेको

बलवान् जाना. एक दिन जो देखा तो बिल्लीनें चूहेको खा लिया. तब उस पुरुषने विचार किया कि, चूहेसे तो बिल्लि बलवान् है; इससे बिल्लीकी उपासना करने लगा. फेर एक दिन देखा तो कुत्तेने बिल्लीकों उठा लिया, तब वह पुरुष कुत्तेंको बलवान् जानकर उसकी उपासना करने लगा. फेर एकदिन देखा तो उस पुरुषकी स्त्रीनें कुत्तेकों रोटी खाते हुए देख उसकों मारा. तब वह पुरुष स्त्रीकी उपासना करने लगा.एक दिन स्त्रीका व्यवहार मलिन देखकरके उस पुरुषने स्त्रीकों मारा तब विचार कर देखा कि, सबसे बलवान् तो मैं ही हूं. ऐसे विचार करके आपही कल्याणकों प्राप्त हुवा.

अब **दार्ष्टांत** कहते हैं. किसी मुमुक्षुनें किसी एक विवेकी पुरुषकों विज्ञापना करी और कहाकि, हे भगवन्! जिसकरके मैं कल्याण रूपी सुखको प्राप्त होवें ऐसा कोई उपायरूपी साधन कहो. तब उस विवेकी पुरुषनें कहने रूपी उपदेश कियाकि,तूं भूमियां रूपी उपास्य देवका पूजन किया कर.और यह कहाथा कि,इतनी बात

विचार लीजो कि बलवान् होता है सोई कल्याण कर्ता है यातें उपास्य देवकों बलवान् जान करके उपासना करने लगा. भोजनादिक आगे धर देवे एक दिन विचार करके देखा तो भोजनको देहरूपी चूहा जीम जाय है और भूमिया स्थानीं उपास्य देव कुछ नहीं कर सक्ता. तब देहरूपी चूहेकी उपासना करने लगा कि, देहही बलवान् रूपी महान् है. फेर एक दिन विचार करके देखा तो देहरूपी चूहेकों बिल्लीरूपी इंद्रिनें उगलिया;तब उस पुरुषनें इंद्रियां रूपी बिल्लीकों बलवान् जानकर इंद्रिरूपी बिल्लीकी उपासना करी. फेर विचार करके देखा तो प्राणरूपी कुत्तेनें इंद्रियरूपी बिल्लीकों उठालिया; इससे वह पुरुष कुत्तरूपी प्राणोंकी उपासना करने लगा, और जाना कि प्राणही बलवान् है. तब फेर विचार करके देखा तो बुद्धिरूपी स्त्रीनें प्राणरूपी कुत्तेकों अन्नपानादिक आहार करते हुए देख करके तिरस्कार रूपी पीट गेरा. तब उस पुरुषने बुद्धिरूपी स्त्रीकों बलवान् जाना कि बुद्धिरूपी स्त्री ही श्रेष्ठ है. फेर उस पुरुषने विचार करके देखा कि, बुद्धि

रूपी स्त्री प्रपंचकों भी निश्चय करे है यह ही ३
व्यवहार मलीन है. यातें उस पुरुषनें बुद्धिरूपी स्त्री
मारनेरूपी तिरस्कार किया. फेर विचार करके दे
कि मैंही बलवान् रूपी महान् हूं.

प्रश्नः--बुद्धि तो सबका अनुभव करती है तो बुद्धीसे आत्मा महान् कैसे कहिये. और इसमें कुछभी प्रमाण है ?

उत्तरः—सुन भाई! बुद्धि चैतन्यकी प्रकाशी हुई घटपटादिक क्यों निश्चय करे; इससे आत्माही महा है. और इसका प्रमाणभी श्रीभगवाननें गीतामें कहा है, सोई कहे हैं ॥ **इंद्रियाणि पराण्याहुरिंद्रियेभ्यः परं मनः ॥ मनसस्तु परा बुद्धिर्योबुद्धेः परतस्तु सः ॥** इसका अर्थ यह है कि, इंद्रियों विषयोंसे श्रेष्ठ हैं ऐसा कहते हैं, और इंद्रियोंसे मन श्रेष्ठ है, मनसे बुद्धि श्रेष्ठ है, और बुद्धिसे पर जो श्रेष्ठ है सोई परमात्मा है.

यह निषेधद्वारा ज्ञान होनेकी षोडशी
युक्ति संपूर्ण हुई॥ १६ ॥

ॐ

सच्चिदानंद आत्माके निर्णयकी युक्ति।

अब सच्चिदानंद आत्माके निर्णयकी सप्तदशी युक्ति कहता हूं—

सिद्धांती कहता है आत्मा आनंदरूप है. कारण सर्वत्र आनंदही आनंद है. आनंद विना कोई व्यवहार सिद्ध नहीं होता.

प्रश्नः—सारे व्यवहार तो कर्तव्यतासे सिद्ध होते हैं. कर्म कांडमें लिखा है जैसे कर्म करता है तैसेही व्यवहार सिद्ध होता है. आनंदहीसे संपूर्ण व्यवहार सिद्ध होते हैं ऐसा कहां लिखा है?

उत्तर—रेभाई! सुन. इसमें श्रुति प्रमाण है ॥ **आनंदाध्द्येव खल्विमानि भूतानि जायंते। आनंदेन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति** ॥ इसका अर्थ यह है कि, आनंदसे ही खलु इति निश्चयेन (निश्चय करके) ये प्राणि

उत्पन्न होते हैं, आनंदकरकेही उत्पन्न हुए जीवते हैं, आनंदकोंही प्राप्त होते हैं और आनंदमेंही प्रवेश करते हैं.

प्रश्नः—अच्छा ठीक. जो आनंद मात्रही संपूर्ण व्यवहारकों सिद्ध करता है तो दुःखकी प्राप्ति काहेतें होय है?

उत्तरः—है तो पूर्ण आनंदरूपही, परंतु संसारमें किसी विषयके उपर चढायकर आनंदकों लेवे है. आनंद तो अपनाही है. परंतु नाशवान् वस्तुके उपर चढायेसे आनंदभी गिर जाय है, जिस वस्तुपर **आनंद** चढायकर आनंद लियाथा उस वस्तुके अभावमें आनंदकाभी अभाव होय है. जब आनंदका अभाव हुवा तब आनंदका विरोधी दुःख हुवा चाहिये.

प्रश्नः--जो आनंदका अभाव हो गया तो आनंद स्वरूपही रहा ?

उत्तरः--अध्यस्त आनंदका अभाव होता है. काहेतें कि, अध्यस्त कल्पितकों कहे हैं और स्वरूपआनंद तो सदा एकरस है. देख ले, अज्ञान कालमेंभी आनंदहीकों

चाहता है. और श्रवण कर जो आनंद विषयपर चढाय कर लेता है कि, जैसे पुत्रपर चढायकर आनंद लिया है. जो तेरी दृष्टि होय तो देख ले कि, आनंद एक रस है. जैसे कि, तैनें जो पुत्रपर अपना आनंद चढाया है वह आनंद और तेरा आनंद एकरस हो रहा है.

प्रश्नः—हम किस प्रकार जानें कि स्त्री पुत्रादिकोंमें अपना आनंद चढाय कर लेवे है. ये तो आनंदरूपही हैं. जो इन्होंके विषे आनंद न होय तो कोईभी स्त्रीपुत्रादिकोंको अंगीकार नहीं करे.

उत्तरः—रे वादी ! सुन. जिस कालमें यही पुरुष दुःखित होता है उस कालमें स्त्री पुत्रादिक आनके पुकारै हैं कि, महाराज ! हमारी ओर देखो, हम तुम्हारे परम प्यारे हैं. तब इस पुरुषकों किसीका बोलनाभी नहीं सुहावता. रे वादी ! अब देख ले, जो अपना आनंदहीपर चढाया है तो स्त्री पुत्रादिक आनंद क्यों नहीं देते.

प्रश्नः—भला ! तो अपना आनंद कैसा ? वहतो दुःखी हो गया.

उत्तरः--इसका उत्तर हम पहलेही दे आये हैं कि, जो नाशवान् वस्तुपर आनंदकों चढायकर लेता है सो आनंद नाशवान् है उस आनंदके भोगनेसे दुःखकों प्राप्त होता है. यहां भी नाशवान् शरीरपर जो आनंदकों चढाय कर लिया है तिसके अभावके दुःखमें आनंदभी नाश हो गया. यातें ज्ञानी पुरुष नाम रूपकों बाधकर परमानंद रूपही रहता है. और वस्तुपर चढाय कर जो आनंद लेते हैं सो उपासिकोंका[1] धर्म है. कारण एक मूर्तिपर आनंदकों चढायकें लेते हैं उस मूर्तिके वियोगसे दुःखकों प्राप्त होवे हैं. और जो कोई कहे कि, उपासिक सर्वव्यापी ईश्वरकों माने हैं तो आपकों जीवही माने हैं. इससे अखंड नहीं भया.

प्रश्नः--जो सर्वव्यापी माने हैं तो उनकी दृष्टिमें सर्वव्यापीही रहा.

उत्तरः--उपासिकके मतमेंभी सर्वव्यापी किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता. इसपर एक युक्ति कहते हैं. कोई

---

१ उपासना (पूजा इत्यादिक) करनेवाला.

बखत सौ उपासिक एक स्थानमें इकठे हुए. किसी पुरुषने आनकर पूछा कि परमेश्वरकों कैसा मानों हो?उन सबोंने कहा कि, हम परमेश्वरकों सर्वव्यापी मानते हैं. और हम उसके दास हैं. तब उस पुरुषनें एक पुरुषकों पूंछा कि, तूं कौन है ? उसनें कहा मैं दास हूं. दूसरेकूं तिसरे-कूं ऐसा सबोंकूं पूछा, सबोंने कहा कि, हम दासही हैं. सौ जणोंमें परमेश्वर कहींभीं नहीं पाया. सौ जणोंने न्यारे न्यारे आपकों जीवही बताये; यातें सगुण सर्व-व्यापी नहीं होता, निर्गुणही सर्वव्यापी है.

प्रश्नः--तो आत्मा आनंदमात्र रहा;ऐसा आनंद तो जडवस्तुविषेभी पावे है. जैसे लाल हिरे विषे जो बाल-कभी देखे तो प्रसन्न होता है.

उत्तरः--रे भाई ! सुन. लाल हिरेविषे जो आनंद होता है सो औरकों प्राप्त होता है. लालहिरा आपकों आनंदरूप नहीं जानता. और यहां आत्मा चैतन्य आनंदरूप है. चैतन्यमात्र सर्वव्यापी है ज्ञानमात्रकों चैतन्य कहते हैं.

प्रश्नः—तो ऐसा चिदानंद सर्वकाल स्थित नहीं रहेगा. कारण मनकरके जाना जाता है.

उत्तरः—रे वादी! सुन. मनके भाव और अभावका साक्षी तीनों कालमें स्थित रहनेवाला तूं आपकोंही देख कि, तूं देहादिकोंसे पहिलेभी था? और अब भी इन देहादिकोंके अभाव होनेसे भी रहेगा? यातें आत्मा अस्ति मात्र (है मात्र) अर्थात् विद्यमान सिद्ध भया; सो सच्चिदानंदस्वरूप स्वयं प्रकाश स्वतः सिद्धही है. इससे विवेकी पुरुष देहादिकोंको बाध करके पूर्णानंद स्थित रहता है और जो वस्तुपर चढायकर आनंद लेते हैं वे दुःखकों प्राप्त होते हैं और उनका अज्ञान नष्ट नहीं हुवा. रेवादी! यहां वैराग्यही कारण है.

प्रश्नः—इस विषे प्रमाण क्या है?

उत्तरः—इस विषे स्मृति प्रमाण है ॥ निषिध्य निखिलोपाधीन्नेतिनेतीतिवाक्यतः ॥विद्या-दैक्यं महावाक्यैर्जीवात्मपरमात्मनोः ॥

इसका अर्थ यह है कि,यह नहीं यह नहीं, इन वाक्यों करके संपूर्ण उपाधियेंको निषेध करके, महावाक्यों करके जीवात्मा और परमात्मा दोनोंकी एकता जानवेकों योग्य है.

प्रश्नः—जो सत् चित् आनंद मात्रही आत्मा है तो स्त्री पुत्रादिक क्या बाधक हैं.

उत्तरः—रे भाई! स्त्रीपुत्रादिक बंधनके कारण हैं, यातें बंधन रूपही हैं.

प्रश्नः—स्त्री पुत्रादिक तो भिन्न ही दीखतें हैं, फेर बांधे कैसे ? इसविषे प्रमाण तो कहो ?

उत्तरः—इसविषे स्मृति प्रमाण है ॥ **लोहदारुमयैः पाशैः पुमान् बद्धो विमुच्यते ॥ पुत्रदारमयैः पाशैर्मुच्यतोपि न मुच्यते॥** इसका अर्थ यह है कि, लोह और काष्ठमय फांसीयोंकरके बंधाहुवा पुरुष छुटता है और स्त्री पुत्रादिकमय फांसियों करके छुटा हुवाभी छूटता नहीं. यातें ज्ञान तो सबोंका बाधकर

होता है. किसी वस्तु विषे जो आसक्ति होय तोभी ज्ञानका होना दुर्लभहै यातें आसक्तिही त्यागना चाहिये.

प्रश्नः—अच्छा ठीक. संपूर्णके बाधमें कभी आत्माकाभी बाध हो जाय और जो बाध न होय तो इसविषे प्रमाण कहो.

उत्तरः--स्मृति प्रमाण है ॥ **सर्वद्वैतबाधेप्यबाधरूपः** ॥ इसका अर्थ यह है कि, संपूर्ण द्वैतका बाध होनेसेभी आत्मा अबाध्यरूप है. सर्वके बाधसें अखंड आनंदरूप शेष रहे है. औरभी प्रमाण **पंचदशी** के पंचकोशविवेकप्रकरणमें कहा है सोभी श्रवण कर.

॥ सत्यत्वं बाधराहित्यं जगद्बाधैकसाक्षिणः॥ बाधः किंसाक्षिको ब्रूहि तत्त्वसाक्षिक इष्यते॥

इसका अर्थ कहते हैं, बाध करके रहित सोई सत्य है.

प्रश्नः--यहां प्रसंग विषे क्या आया ?

उत्तरः—जगतके बाधका एक साक्षी है,जगतका बाध कहिये सुषुप्ति मूर्छा समाधिमें अविद्यमानता.

प्रश्नः—जगतके बाधमें साक्षीकाभी बाध होवे.

उत्तरः—जगतके बाधमें जो साक्षीका बाध होवे तो तूंही कह कि, बाधका कौन साक्षी है? कोईभी नहीं.

प्रश्नः—साक्षी विनाभी आत्माका बाध क्यों न होवे?

उत्तरः—साक्षीरहित बाध नहीं होता है और प्रकार अति प्रसंग आवे है; इससे सर्वथा सच्चिदानंदही स्वतः सिद्ध है.

इति सच्चिदानंद आत्माके निर्णयकी सप्तदशी
युक्ति संपूर्ण हुई ॥ १७ ॥

ॐ

पगडीके दृष्टांतसे ज्ञान निर्णयकी युक्ति ।

अब पगडीके दृष्टांतसे ज्ञानके निर्णयकी अढारवी युक्ति कहताहूं—

दृष्टांत कहते हैं.कोइ राजानें किसी पुरुषकों बुलावनेकों दूत भेजा.उस पुरुषने कहा कि मेरा कोई मंत्री नहीं.तो किससे मैं संमत करूं कि मुझकों राजाके निकट जाना उचित है कि नहीं?फेर पुरुषनें विचार किया यह तो चाकर है इससे इस सेवकसे क्या संमत करूं.इसकों वह युक्ति याद आई कि, किसीने कहा है कि जो कोईभी मंत्री नहीं होय तो अपनी पगडीसे संमत करना. तब यह पुरुष अपनी पगडीकों संमुख करके संमत करने लगा, इतनेमें इसके चित्तमें स्फुरण हुवा कि, जिस वार्तामें गुण बहुत होवें और अवगुण तुच्छ (थोडा) होवे सो कीजिये; तब इसके चित्तमें स्फुरण

हुआ कि राजाके निकट नहीं जानेसे इतनाही तो गुण है कि, आराम बना है और श्रम नहीं होते हैं.और अवगुण बहुत हैं कि, पहिली अवज्ञा तो बनी हुई है. और नही जानेसे नई अवज्ञा बनेगी.और वह राजा है, न जाने किस प्रकार ताडना करे. और जो जाऊंगा तो जानेका श्रम तो होयगा, परंतु राजा अपराधकों क्षमा कर देवेगा और इसविषे सुख अधिक होयगा; इससे जानाही उचित है. तब यह पुरुष उस राजाके सन्मुख गया. तब राजानें कुछ कागद् बनावनेकी आज्ञा करी सो उस पुरुषनें छह पहर वीतने पर्यंत उस कागद्कों अच्छे प्रकार बनाया और राजाकों दिखाया. राजा कागद्कों देख कर बहुत प्रसन्न हुवा. और उस पुरुष कों प्रसाद दिया. तब वह पुरुष निर्भय होकर आनंदकों प्राप्त हुवा.

अब **दार्ष्टांत** कहते हैं. जीवरूपी पुरुषकों ईश्वर रूपी राजानें शास्त्र रूपी दूत भेज करके बुलावने रूपी सन्मुख होनेकी आज्ञा करी, तब उस जीवरूपी

पुरुषनें कहा कि, मैं किससें विचाररूपी संमत करूंकि, मुझकों ईश्वर रूपी राजाके निकट जाना उचित है वा नहीं है? इंद्रियरूपी सेवकोंसें क्या संमत करूं. तब बुद्धिरूपी पगडीकों सन्मुख करके विचार रूपी संमत करने लगा, तब इसके चित्तमें ऐसा स्फुरण हुवा कि, ईश्वररूपी राजाके निकट नहीं जानेमें इतना ही तो गुण है कि विषयानंदरूपी आराम बना हुवा है और निकट जानेसे यह विषयानंद नहीं रहेगा और अवगुण बहुत है कि पहलेही सन्मुख रूपी अवज्ञा करके आवागमन विपत्तीकों भोगूं हूं और अब नई अवज्ञा बनेगी तो ईश्वररूपी राजा क्या ताडना रूपी जन्ममरणका विशेष दुःख दिखावेगा. और जो मैं ईश्वर रूपी राजाके सन्मुख होऊंगा तो साधन रूपी श्रम तो होवेगा,परंतु ईश्वररूपी राजा अपराधकों क्षमा कर देगा, इसमेंही मेरा कल्याण होयगा. यातें ईश्वररूपी राजाके निकट जाना ही उचित है; तब यह जीवरूपी पुरुष ईश्वररूपी राजाके निकट जानारूप

सन्मुख भया. ईश्वररूपी राजानें कागद बनावने स्थानीं कुछ साधनकी आज्ञा करी. तब जीवरूपी पुरुषनें छ पहर बीतनेरूपी छहों ऊर्मियांके अभाव पर्यंत साधन रूप कागदके बनावनेकी प्रार्थना करी. तब ईश्वररूपी राजानें सच्चिदानंदरूपी प्रसाद दिया तब जीवरूपी पुरुष आनंदकों प्राप्त हुवा.

प्रश्नः--इसविषे प्रमाण क्या है ? एक षडूर्मिकाही अभाव किया है, कुछ विशेषता तो दीखती नहीं.

उत्तरः—इसविषे श्रुति प्रमाण है, सोई कहते हैं ॥ **षडूर्मिरहितः शिवः** ॥ इसका अर्थ कहते हैं. छहों ऊर्मियों करके जो रहित सोई शिव है. शिव कहिये कल्याणरूप आत्मानंद है. षडूर्मि कहे हैं, अशन पिपासा प्राणोंके धर्म हैं, जरामरण स्थूल देहके धर्म हैं, शोक मोह मनके धर्म हैं, इन्होंकी निवृत्ति लिंग शरीरके अभावमें होती है; सोई उपनिषदोंमें लिंगभंगमुक्ति नामसे प्रसिद्ध है.

प्रश्नः—कारणके निषेधविना ज्ञान नहीं होता. तुमनें ज्ञान किसप्रकार मान लिया है ?

उत्तरः—रे वादी ! सुन. कारणका निषेध श्रवण मनन निदिध्यासन विना नहीं होता है. सोई मुमुक्षुनें किया है, और कारणके अभाव विना लिंगशरीरका अभाव नहीं होता है.

प्रश्नः—श्रवण मनन निदिध्यासनके करनेसे कारणका अभाव कर्मादिकोंके विना नहीं होता यातें कर्मादिकोंका कारण मुख्य है, और श्रवणादिकसे ज्ञान होता है इसविषे प्रमाण क्या है.

उत्तरः—यहां श्रुति प्रमाण है ॥ **आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः ॥** इसका अर्थ यह है कि, आत्मा साक्षात्कार करवेकों योग्य है, आत्माही श्रवण करवेकों योग्य है, आत्माही मनन करवेकों योग्य है, आत्माही निदिध्यासन करवेकों योग्य है.

प्रश्नः—इस श्रुति करके ज्ञान नहीं सिद्ध भया, का-

हेतैं कि, पहले द्रष्टव्य पद कहा है कि साक्षात्कार पद कहा है और श्रवण मनन निदिध्यासन पीछें कहे.

उत्तरः--द्रष्टव्य इस पदकरके ऐसा अर्थ सिद्ध भया कि साक्षात्काररूपी पहले फल दिखाय करके, तिसके साधन श्रवण मनन निदिध्यासन कहे हैं, ज्ञान कांडमें यही मर्यादा है कि पहिलें फल दिखाय करके पीछे साधन दिखावे हैं; यातें कारणके अभावकी तो शंका नहीं बने है.

यह ज्ञानके निर्णयकी पगडीके दृष्टांत विषे
अष्टादशी युक्ति संपूर्ण हुई ॥१८॥

ॐ

आत्मानंदके निर्णयकी युक्ति ।

अब आत्मानंदके निर्णयकी एकोणीसवी युक्ति कहताहूं?—

प्रश्नः—मुमुक्षुका आत्मानंद कैसा है? जिस प्रकार आत्मानंदका लाभ होवे सोई प्रकार कहो.

उत्तरः—गुरु (सिद्धांती) कहता है. जैसे एक चक्रवर्ती राजा होवे, तिसकी षोडश वर्षकी अवस्था होवे, और कोई अंगभंग नहीं भया हो, और तिस राजाकी स्त्री षोडश वर्षकी अतिसुंदरी हो, और तिस राजाकी आज्ञा कोई भंग नहीं कर सके, और खजिनामें धन ऐसा हो कि पर्वत सरीखे ढेर लगे होवें, और महान् शास्त्रज्ञ हो और धर्मज्ञभी हो, और सर्व कलाकुशल हो, अति सुंदर भी हो और कामदेवकासा स्वरूप हो, उस पुरुषको एक मनुष्यानंद कहते हैं, तिससे सहस्र

गुणा आनंद भूलोकका है, और तिससे सहस्रगुणा आनंद भुवर्लोकका है, और तिससे सहस्रगुणा आनंद स्वर्ग लोकका है,और तिससे सहस्र गुणा आनंद महर्लोकका है, और तिससे सहस्रगुणा आनंद जनलोकका है,और तिससे सहस्रगुणा आनंद तपलोकका है, और तिससे सहस्रगुणा आनंद सत्यलोकका है, और तिससे सहस्रगुणा आनंद ब्रह्मलोकका है,और तिससे सहस्रगुणा अधिक आनंद ब्रह्मादिकका है, सोई ब्रह्मादिकका आनंद आत्मानंदरूप महान् समुद्र तिसका एक लेश मात्र है.

प्रश्नः—इसविषे प्रमाण क्या है ? ब्रह्मादिकका तो महान् आनंद सुनिये है ?

उत्तरः--स्मृति प्रमाण है, सोई कहते हैं॥ **अखंडानंदरूपस्य तस्यानंदलवाश्रिताः ॥ ब्रह्माद्यास्तारतम्येन भवंत्यानंदिनो लवाः॥** इसका अर्थ यह है कि, ब्रह्मा, इंद्रादिक परिछिन्न आनंदी हैं, और ब्रह्म अखंड आनंद है. अनुभवआनंदस्वरूपसे

अपरिछिन्न है आनंदस्वरूप जिसका, तिस आनंदसमुद्रके लेशकों आश्रय करके ब्रह्मादिकभी आनंदकी तारतम्यताकरके आनंदी हो रहे हैं.

प्रश्नः—श्रुतिही प्रमाण कहो तो तुम्हारा वचन मानैं.

उत्तरः—श्रुतिही प्रमाण कहते हैं ॥ **एतस्यैवानंदस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजिवंति ॥** इसका अर्थ यह है कि, और प्राणी इसही आनंदके लेशमात्रकों लेकरकें आनंदी हो रहे हैं.

यह आत्मानंदके निर्णयकी एकोनविंशतितमी युक्ति संपूर्ण हुई ॥ १९ ॥

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

तत्पद और त्वंपदके निर्णयकी युक्ति ।

अब तत्पद और त्वंपदके निर्णयकी वीसवी युक्ति कहताहूं--

गुरुने शिष्यकों कहा कि, ऊतिनी रांडके शिष्यने विनती करी कि, महाराज ! इसका अर्थ कहो मैं ऊतिनी रांडका किसप्रकार हूं. तिसकों गुरु उपदेश करता है. तू ऊतिनी रांडका है, काहेतें कि, बुद्धिरूपी स्त्रीका जीवरूपी पुत्र और ईश्वररूपी पति. तिस जीवरूपी पुत्रका जीवत्व तो नाश हुवा, तो बुद्धि ऊतिनी हुई, और ईश्वररूपी पतिका अभाव हुवा तो रांड भई; तिस करके तत्पद और त्वंपद इन दोनोंके वाच्य अर्थोंको त्यागकर असिपद तूंही शेष रहा, याहींतें तूं ऊतिनी रांडका है.

प्रश्नः—इसविषे प्रमाण क्या ? और बंधसे मुक्ति किसप्रकार होवे ?

उत्तरः—इसविषे स्मृति प्रमाण है ॥ **विज्ञाते साक्षिपुरुषे परमात्मनि चेश्वरे ॥ नैराश्ये बंधमोक्षे च न चिन्ता मुक्तये मम ॥** इसका अर्थ यह है कि, देह इंद्रियादिकोंके साक्षी पुरुष त्वंपदके लक्ष्यार्थकों और परमात्मा ईश्वर तत्पदके लक्ष्यार्थकों ब्रह्म मैं हूं ऐसा साक्षात् करनेसे नित्यमुक्त चिद्रूप आत्मा अनुभवसे बंध और मोक्षविषेभी आशारहित होनेसे मुझे मुक्तिके अर्थ चिंता नहीं है.

प्रश्नः—मुक्तिके अर्थ तो चिंता न हो, परंतु पुण्य और पापोंका स्पर्श तो होगाही ?

उत्तरः—रे भाई ! सुन. ज्ञानीकूं पुण्यपापोंका संबंध नहीं है; काहेतें, ज्ञानी विधिका दास नहीं है. स्मृतिमें कहाभी है कि ॥ **तज्ज्ञस्य पुण्यपापाभ्यां स्पर्शो ह्यंतर्न जायते ॥ नह्याकाशस्य धूमेन दृ-**

श्यमानापि संगतिः ॥ इसका अर्थ यह है कि, तत्पद और त्वंपदका जो लक्ष्यार्थ तिसकी एकता जाननेवालेकों पुण्य और पाप दोनोंकरके सहित अंतःकरणके धर्मोंका संबंध नहीं होता है; इसविषे **दृष्टांत** कहते हैं. जैसे निश्चय करके आकाशकों धूम करके सहित देखनेमात्रभी संगति नहीं.(अर्थात् धूमने आकाशको स्पर्श किया है ऐसा दीखता मात्र है परंतु धूम आकाशकों स्पर्श नहीं करता) **दार्ष्टांत** कहते हैं, तैसेही आकाशरूपी तत्वज्ञकों पुण्यपाप कर्मरूपी धूम करके सहित कथनमात्रभी है परंतु संगति नहीं है अर्थात् तत्वज्ञकों पुण्यपापोंका स्पर्श नहीं होता.

यह ऊतिनीरांडके विकल्पविषे तत्पद और त्वंपदके निर्णयकी विंशतितमी युक्ति संपूर्ण हुई ॥२०॥

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

चरखाके दृष्टांतसे परमानंदप्राप्तिके उपायकी युक्ति ।

अब चरखाके दृष्टांतसे परमानंदके प्राप्तिके उपायकी एकवीसवी युक्ति कहताहूं—

दृष्टांत कोई माता अपनी पुत्रिकों रुई तूमनी चरखा कातना सिखावे है, रुईकी फुटकी दूर करे है. प्रथम जो पुत्री चरखा कातै है तो तार एकरस नहीं आवता; कभी मोटा कभी पतला कभी टूट जावे है. और जब भले प्रकार उस्कों कातना आवे है, तब न तार मोटा न पतला न टूटै है, अंधेरेमें और उजालेमें एकरस तार निकले है. अब **दार्ष्टांत** कहते हैं; गुरुरूपी माता मुमुक्षुरूपी पुत्रीकों रुइतूमनें स्थानी संघातका शोधन, और कातने स्थानी विचार उपदेश करे हैं. और रुईमें जो फूटकी निकले हैं तिस स्थानीं अहंकार

राग द्वेषादिकनकों दूर करे हैं, और वेदरूपी जो चरखा तिसविषे संघातरूपी रुईकों विचार स्थानीं कातै हैं, और तारस्थानीं अपने स्वस्वरूपका आनंद उत्पन्न होवे है, और मोठे पतले तारस्थानीं संशय असंभावना है और तारके टूटनेरूपी विक्षेपादिक हैं, और भले-प्रकार कातनेको क्या सीख्या कि, यथार्थ विचार किया, तब अंधेरे और उजाले रूपी प्रवृत्ति और निवृत्ति विषे एकरसता रूपी आनंदही रहे हैं.

प्रश्नः--प्रवृत्ति और निवृत्ति विषे तो एकरसता नहीं रही है, इसमें कोई प्रमाण कहो तो हम मानैं.

उत्तरः--स्मृति प्रमाण है सोई कहते हैं ॥ **प्रवृत्तौ जायते रागो निवृत्तौ द्वेष एव हि ॥ निर्द्वंद्वो बालवद्धीमानेवमेव व्यवस्थितः ॥** इसका अर्थ यह है कि, विषयोंमें रागसहित प्रवृत्ति होनेसे विषयोंविषे राग (प्रीति) होवे है; और विषयोंमें विद्वेषपूर्वक निवृत्ति होनेसे विषयोंविषे द्वेष होय है; इसी कारणसे ज्ञानी बालककी नाई शुभ और अशुभके

अनुसंधान करके रहित, राग और द्वेष दोनों करके रहित होनेसे आनंदरूपही स्थित है.

प्रश्नः--प्रवृत्ति निवृत्तिको व्यवहार तो दीखे है. और ज्ञानी किसप्रकार प्रवृत्ति निवृत्ति माने नहीं ?

उत्तरः--रे भाई ! सुन. प्रारब्धके वशसे कभी प्रवृत्ति होती है और कभी निवृत्ति होती है, परंतु रागद्वेषके वशसे कभी नहीं.

प्रश्नः--तुमनें वेदकों चरखे स्थानी कहा तो वेदकी क्या उपमा रही ऐसा वचन तो कहीं प्रमाण है नहीं. वेदही ब्रह्म है ऐसा तो प्रमाण सुना है, कारण वेद ब्रह्मकों प्रतिपादन करता है.

उत्तरः--गीतामें प्रमाण है सोई कहते हैं. **त्रैगुण्य-विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ॥ निर्द्वंद्वो नित्यसत्वस्थो निर्योग क्षेम आत्मवान्॥** इसका अर्थ कहते हैं त्रिगुणात्मक जे सकामी पुरुष हैं, तिन्होंको त्रिगुणात्मक कर्मफलके प्रतिपादन करनेवाले वेद हैं, इससे हे अर्जुन! तूं तीनों गुणोंकी कामना करके रहित

हो. निष्कामविषे उपाय कहे हैं. सुख दुःख शीतोष्णादिक द्वंद्वोंकरके रहित होनां कहिये इनको सहना. जो तूं कहे कि, किस प्रकार सहों? तो सहनेका प्रकार कहते हैं. नित्य सत्वगुणमें स्थित होनेसे धैर्यको अवलंबन करके सहनेसेही योग और क्षेमकरके रहित हो, योग कहिये अप्राप्तवस्तुका जो अंगीकार सो और प्राप्त वस्तुका जो पालन सो क्षेम; तिन दोनों करके रहित हो. तैसेही आत्मवान् कहिये अप्रमत्त हो अर्थात् प्रमादी मत हो.

प्रश्नः—ऐसा ज्ञान तो अपने विचारने करके हि होय है तो फेर गुरुका क्या प्रयोजन है?

उत्तरः--शिष्य कैसाही शास्त्रज्ञ होवे परंतु गुरुके विना ज्ञान नहीं होता.

प्रश्नः--इसका प्रमाण कहो. वह प्रमाण जो श्रुति-स्मृतिसंमत होगा तो मानूंगा.

उत्तरः--अरे शिष्य ! श्रुति स्मृतिही प्रमाण कहते हैं श्रवण कर. ॥ **नैषा तर्केण मतिरापनेया**

प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठा॥ इत्यादि श्रुतिः। इसका अर्थ यह है कि, हे नचिकेत ! यह ब्रह्मको विषय करनेवाली बुद्धि मूल प्रमाण रहित शुष्क तर्क करके नहीं प्राप्त होती है. तो किसप्रकार प्राप्त होती है सो कहते हैं. और सर्वज्ञ गुरु करके युक्ति दृष्टांत पूर्वक उपदेश करनेसे भले प्रकार ब्रह्मकों विषय करनेवाली विद्या, अविद्याकी निवृत्तिके अर्थ है. यह कठवल्लीकी श्रुति प्रमाण है इसकों आदिलेकर औरभी श्रुतियां कहते हैं और स्मृतिभी श्रवण कर॥ आचार्येभ्यो लब्धसुसूक्ष्माच्युततत्वाद्वैराग्येणाभ्यासबलाच्चैव द्रढिम्ना॥ भक्त्यैकाग्रध्यानपरा यं विदुरीशं तं संसारध्वांतविनाशं हरिमीडे ॥ इसका अर्थ यह है कि, आचार्योंसे लब्ध (जाना गया) जो अतिशय सूक्ष्म अच्युततत्व (निर्विकार नित्य विष्णुपद) तिससे उत्पन्न हुवा जो वैराग्य और अभ्यास (विष्णुपदका वारंवार श्रवण करना) तिसकरके प्राप्त हुवा

जो बलरूपी मनन तिनदोनों करके उत्पन्न हुई जो दृढ भक्ति (मैं ब्रह्म हूं) तिससे एकाग्रध्यान (निदिध्यासन) तिसमें तत्पर रहनेवाले जे साधुलोक संसार (जन्ममरण) संबंधी जो ध्वांत (अज्ञान) तिसका नाश करनारा जो परमात्माका स्वरूप तिसकों साक्षात् करते हैं तिस हरिकी मैं स्तुति करता हूं. यातें हे शिष्य! तूं परमानंदरूपही है, तुझविषे विकल्पका संभव नहीं होता.

यह चरखाके दृष्टांत करके परमानंदके प्राप्तिके उपायकी एकविंशतितमी युक्ति संपूर्ण हुई ॥ २१ ॥

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

ज्ञानरूपी पुत्रनिर्णयकी युक्ति ।

अब ज्ञानरूपी पुत्रके निर्णयकी बावीसवी युक्ति कहताहूं--

दृष्टांत कोई पुरुषने किसी महापुरुषकी पुत्रके अर्थ टहल करी. इन्होंनें कहा कि, तेरेकूं पुत्र होगा. सो तिस पुरुषकों पुत्र हुवा. फिर उसने प्रार्थना करी कि मेरेकों पुत्र होवे; महापुरुषने कहा तेरेकों यही पुत्र होवेगा. वारंवार प्रार्थना करनेसे ऐसाही कहा कि, तेरेकूं यही पुत्र होवेगा.

प्रश्नः--महाराज! पुत्र तो होगया था; फेर यह कहा कि यही पुत्र होगा, यह वचन मैं नहीं समझा.

उत्तरः—पुत्र वोही है जो पिताका नरकसे उद्धार करे. सो वह पुत्र अबही पुत्रधर्मकों नहीं प्राप्त हुवा इससे वारंवार यही कहा कि, तेरेकों यही पुत्र होवेगा.

दार्ष्टांत कहते हैं. गुरुनें मुमुक्षुकी विज्ञापना श्रवण करके "**तत्त्वमसि**" वाक्यरूपी जो ज्ञानका उपदेश किया सोई ज्ञानरूपी पुत्र हुवा. परंतु वह पुत्र सामान्यसे हुवा उसका यथार्थ संशय निवृत्त नहीं हुवा. इससे फिर ज्ञानरूपी पुत्रकी वांछारूपी प्रश्न संशयकी निवृत्तिके अर्थ किया. और वारंवार गुरुका उपदेश करना शिष्यकी दृढताके अर्थ है. सो अभ्यासकी दृढता करके वेही ज्ञान परिपाकको प्राप्त होता है. जैसे उसी पुत्रनें पुत्रधर्मको प्राप्त होकर पिताका नरकसे उद्धार किया तैसेंही इस ज्ञानरूपी पुत्रनें जीवरूपी पिताका जन्ममरणस्थानी नरकसे उद्धार किया.

प्रश्नः--इस विषे प्रमाण कहां है ?

उत्तरः--स्मृति प्रमाण है. ॥ **पुन्नामनरकाद्यो वै त्रायते स तु पुत्रकः** ॥ इसका अर्थ यह है कि, पुन्नामा नरकसे जो तारे सोई पुत्र है.

प्रश्नः--वहां तो स्त्रीसे पुत्र हुवाथा यहां कौन स्त्री है?

उत्तरः--व्यवसायात्मिका बुद्धिरूपी स्त्रीको पुत्र है. जो पतिव्रता स्त्रीकों पुत्र होता है सोई पिताका कल्याण करता है. और व्यभिचारिणी रूपी अव्यवसायात्मिक बुद्धिसे जो ज्ञानरूपी पुत्र भया सो घटपटादि रूपी अनेक ज्ञान हैं. वे चैतन्यरूपी पिताके कल्याणके हेतु नहीं है.

प्रश्नः--व्यवसायात्मिका और अव्यवसायात्मिका बुद्धिके निर्णयविषे प्रमाण क्या है ?

उत्तरः--स्मृति प्रमाण है.श्रीकृष्ण भगवाननें गीतामें कहा है कि ॥**व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनंदन ॥ बहुशाखा ह्यनंताश्च बुद्धयो व्यवसायिनाम्** ॥ इसका अर्थ कहते हैं, हे अर्जुन! इस जगतविषे व्यवसायात्मिका (शुद्ध) बुद्धि एकही है. बहुत हैं शाखा जिनकी ऐसी अनंत बुद्धियां अव्यवसाई पुरुषोंकीं हैं.

प्रश्नः--प्रथम तुमनें कहाथा कि, प्रथम सामान्यसे ज्ञान होता है और फेर विशेषसे होताहै, इसविषे प्रमाण क्या है ?

उत्तरः--**दृष्टांत** जैसें प्रथम सूर्यका बिंब जो उदय होवे है सो अरुण; तिसका प्रकाश सामान्य होता है सो अंधकारकों यथार्थ निवृत्ति नहीं करसक्ता. और जिस कालमें विशेष प्रकाश होता है तिसवखत सो संपूर्ण अंधकारकों निवृत्त करता है. इस ही प्रकार दार्ष्टांतिक जानलेना.

प्रश्नः--इस विषे प्रमाण कहो.

उत्तरः--इसविषे स्मृति प्रमाण है सोई कहते हैं. **॥ अरुणेनेव बोधेन पूर्वं संतमसि द्रुते ॥ तत आविर्भवेदात्मा स्वयमेवांशुमानिव ॥** इसका अर्थ यह है कि, जीवात्मा परमात्माके ऐक्यज्ञान करके पहले अज्ञानका नाश होता है और अज्ञानका नाश होनेके पीछे आत्मा आपही उदय होता है. यहां दृष्टांत कहते हैं जैसे अरुणके प्रकाश करके पहिले अंधकारका नाश होता है और तिस पीछे सूर्य आपही उदय होता है तिसकीही नांई आत्माकोंभी जानना.

यह ज्ञानरूपी पुत्रके निर्णयकी द्वाविंशतितमी युक्ति संपूर्ण हुई ॥ २२ ॥

ॐ

कर्तृत्वभोक्तृत्वनिर्णयकी युक्ति।

अब कर्तृत्वभोक्तृत्वके निर्णयकी तेवीसवी युक्ति कहताहूं--

सिद्धांती विचार करता है कि कर्तृत्व भोक्तृत्व किसके लगाये हैं. जो कहिये कि ईश्वरके लगाये हैं तो लगावनेवाला ईश्वर हुवा. तो यह जीव किसप्रकार भोक्ता होवे ? और जो कहिये, ईश्वर महान् है इससे बलात्कार करके लगावे हैं तो जिसनें कर्तृत्वभोक्तृत्व लगाये हैं उससे कल्याण कैसे होवेगा. और जो कोई कहे कि, ईश्वर कल्याणभी कर देवेगा तो पुरुषार्थ मारा गया. इससे कर्तृत्व भोक्तृत्व ईश्वरके लगाये नहीं. काहेतें, ईश्वरकी लगाई वस्तुका अभाव करनेका कोई उपाय नहीं तो ज्ञानकांड नहीं बनेगा. जो ज्ञान नहीं बनेगा तो कर्म उपासनाभी नहीं बनेगी. इससे

वेदकों व्यर्थता आवेगी. और जो कोई कहे कि, ईश्वर किसीकों तो कर्तृत्वभोक्तृत्व लगावे है, और किसीकों नहीं लगावे है; तो ईश्वरमें दो दूषण आते हैं. एक नैर्घृणता और एक विषमता.

प्रश्नः--वादी कहता है, नैर्घृणता और विषमता क्या है ?

उत्तर--नैर्घृणता कहिये उत्पत्तिकालमें जगतकों स्व करकें, प्रलयकालमें अपनेविषे दयारहित लय करना. और विषमता कहिये किसीकों सुख देना और किसीकों दुःख देना. और ईश्वर तो निर्दोष है, ज्ञानस्वरूप है, इसवास्ते ईश्वरमें दूषण कहना अनर्थापात है.

प्रश्नः--अच्छा ठीक. कर्तृत्व भोक्तृत्व अविद्याके किये हुये हैं ऐसा मान लो.

उत्तरः--रे भाई! सुन.अविद्याके भी किये हुये नहीं. प्रथम तो अविद्या अवस्तु है और निर्विकल्प है. अविद्याका नामही कूटस्थ (निर्विकार) है.

प्रश्नः--तुम जो कर्तृत्वभोक्तृत्व अविद्याके किये नहीं ऐसा कहते हो तो रज्जुविषे अज्ञानसे सर्पभान होवे वा नहीं?

उत्तरः--रे वादी! सुन. घन अंधकारमें रज्जुभी नहीं दीखे हैं तो सर्पका विकल्प कहांसे आया ?

प्रश्नः—जो तुम अविद्या कुछ वस्तु नहीं मानो तो अविद्याका कार्यवर्ग जगत् कैसे मान लिया ?

उत्तरः--रे भाई ! सुन. कारण तो निर्विकल्पही है. जो कारणमें वस्तु होती है सो भान नही होती; जब कार्यमें आवे है तब भान होय है.

प्रश्नः—इसमें कोई युक्ति कहो तब तुम्हारा वचन मानूंगा.

उत्तरः—जैसें वटका कारण बीज है, परंतु बीजमें वट दीखता नहीं. जो बीजकों चीरकरभी देखिये तो कहीं हरियालीका नामभी नहीं. और फिर उस बीजहीसे जब वृक्ष उदय हुवा तब जाना कि यह वट है.

प्रश्नः--अच्छा तुम्हारे कहनेसेही अविद्याके किये कर्तृत्व भोक्तृत्व पाये.

उत्तरः–रेभाई! सुन.कर्तृत्व भोक्तृत्वका कारण और ही है, अविद्या नहीं है. हमनें कारण कार्यका वटबीजका जो दृष्टांत दिया है सो अविद्याका नहीं दिया. जो इस कर्तृत्व भोक्तृत्वका कारण है सो दृष्टांत दिया है. यातें केवल अविद्यासे कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं बनते. और उभयवान् (अविद्या और चैतन्य दोनो करके संयुक्त) ईश्वरसेभी नहीं होते.

प्रश्नः--तो शुद्ध ब्रह्मसे होयंगे?

उत्तरः--शुद्ध नाम तो निर्विकल्पका है. निर्विकल्पमें विकल्प कभी संभव नहीं होता.

प्रश्नः--तो हमनें जाना कि, कतृत्व भोक्तृत्व कर्मोंके करे हैं.

उत्तरः--कर्म तो चैतन्यसे पूर्व थेही नहीं,यातें कर्मोंके करे भी नहीं.

प्रश्नः--महाराज! तो तुमही निर्णय करके कहो.

उत्तरः--इस चैतन्यने आपहीं स्वाभाविक मान लिये है, किसीकेभी किये नहीं हैं. कारण कर्तृत्व भोक्तृत्व वास्तविक नहीं. रे वादी ! जो कर्तृत्व भोक्तृत्व वास्तव होते तो किसीके भी मिटाये नहीं मिटते; जो रज्जु विषे सर्प किसीका वास्तव किया होता तो किस प्रकार निवृत्त होता. सर्पविना ही सर्पभान होता है. यह तूं देख ले, चैतन्यपुरुषकों सर्प स्वतःही भान होगया कि स्वाभाविक ही सर्प फुर आया. तूंही कह कि, रज्जूमें सर्प ईश्वरका किया है वा अज्ञानका किया है अथवा शुद्धका किया है वा कर्मका किया है?

प्रश्नः--रज्जुमें तो सर्प जब फुरा है तबसे पहले सच्चा सर्प देखा है; वह सच्चा सर्प किसीका रचा हुवा है.

उत्तरः--यह तेरा कहना नहीं संभवता. इस तेरे कहनेमें दो ज्ञान चाहिये हैं, किसप्रकार कि, रज्जुमें सर्पका देखनेवाला ऐसा कहता होवे कि, जैसा सर्प मैंनें पहले देखाथा वैसाही वह सर्प है. ऐसा कहनेसे तो

पहले सर्पका ज्ञान और इस सर्पकाभी ज्ञान ऐसे दो ज्ञान हुवे. ऐसा तो कोई नहीं कहता. जो कहे सो यह कहे कि, यह सर्प बडा है. अनहुवाही सर्प भान होवे है. और प्रकारभी श्रवण कर. आकाशमें जो नीलता भान होती है सो आकाशमें पहले नीलता कहां देखी है, इससे कर्तृत्व भोक्तृत्व अनहुवेही भान होवे हैं. इससें आपकों कर्ता भोक्ता मान लिया है यह यथार्थ निर्णय है. जब विचार करेगा तब कर्तृत्व भोक्तृत्वकी गंधभी न पावेगी. जो होते तो कहां जाते.

प्रश्नः--जो इस (जीव)नें आपही कर्तृत्व भोक्तृत्व मान लिये हैं तो निवृत्त किस प्रकार होवेंगे? कारण तुम्हारे कहनेमें यह निर्णय भया कि, कर्मोंके करनेमें तो स्वतंत्र है परंतु भोगनेमें तो परतंत्र है. यातें स्वतः निवृत्त कैसें होवेंगे. अपने करकेही किसी प्रकार निवृत्त नहीं होते.

उत्तरः--ज्ञान करके निवृत्त होवेंगे.

प्रश्नः--तो दूसरे ज्ञानकी सहायता मानी ?

उत्तरः–रे वादी ! तूं मेरे अभिप्रायकों नहीं समझा. अरे मैं तो ज्ञानस्वरूपही हूं. और तूं दूसरेकी सहायता कैसी कहता है.

प्रश्नः–जो तुमने ज्ञानकरके निवृत्ति मानी तो अज्ञान करके कर्तृत्व भोक्तृत्वका होनाभी मानो.

उत्तरः–अज्ञान तो जड है और ज्ञान चैतन्य है. जिस प्रकार खातीका कार्य थंभसे नहीं बनता तैसा चैतन्यका कार्य जडसे नहीं बनता.

प्रश्नः–तो हमने कहाथा कि ईश्वरसे कर्तृत्व भोक्तृत्व होवे तो ईश्वरको क्या तुमनें जड माना है. ईश्वर तो सबके मतमें चैतन्यही माना है. यातें तुम्हारेही कहनेसे कर्तृत्व भोक्तृत्व ईश्वरके करे हुए बन गये.

उत्तरः–अरे वादी ! तूं बहुत भूला है. जो कर्तृत्व भोक्तृत्व ईश्वरके करे हुए मानेंगा तो ईश्वरविषे फेर दोष आवेंगे. यह पूर्वेही हम कह आये हैं. इससे तेरा कहना तो जब बने कि, कुछ कर्तृत्व भोक्तृत्व वास्तव पावें. जो तूं दृष्टी करके देखे तो कर्तृत्व भोक्तृत्व ऐसे

फुरे हैं कि, जैसे जलमें तरंग फुरते हैं. और वह तरंग तो कुछ वास्तव नहीं.

प्रश्नः—अच्छा इसविषे कोई प्रमाण कहो.

उत्तरः—इसविषे स्मृति प्रमाण है. ॥ **त्वय्यनंत महाम्भोधौ विश्ववीचिः स्वभावतः ॥ उदेतु वास्तमायातु न ते वृद्धिर्न वा क्षतिः ॥** इसका अर्थ यह है कि, तुझ अनंत महान् समुद्रमें जगद्रूपी तरंग स्वभावसे उदय होते हैं अथवा लयकों प्राप्त होते हैं;परंतु तेरेकों वृद्धि नहीं अथवा हानी नहीं.

प्रश्नः—कोई श्रुति कहो.

उत्तरः—॥ **अयमात्मा ब्रह्म** ॥ इसका अर्थ यह है कि, यह आत्मा ब्रह्म है. ऐसा कहनेसे कर्तृत्व भोक्तृत्व वास्तव नहीं यह सिद्ध हुवा.

यह कर्तृत्व भोक्तृत्वके निर्णयकी त्रयो-
विंशतितमी युक्ति संपूर्ण हुई ॥२३॥

ॐ

स्वतःप्रमाण परतःप्रमाणनिर्णयकी युक्ति।

अब स्वतः प्रमाण और परतः प्रमाणके निर्णयकी चोवीसवी युक्ति कहता हूं.

प्रश्नः—वादी पूछता है कि, आत्मा स्वतः प्रमाण है अथवा परतः प्रमाण है. जो तुम कहोगे आत्मा स्वतः प्रमाण है, तो वेदमें "तत्त्वमस्यादिक" वाक्योंको आदि लेकर वेदमें शब्दादिक प्रमाण कहे हैं, तो वेदको व्यर्थता आती है. और जो तुम कहोगे कि परतः प्रमाण है तो दृश्य हुवा. और दूसरेनें सिद्ध करनेसें सिद्ध हुवा.

उत्तरः--रे भाई! आत्मा स्वतःप्रमाण है; कारण आत्माके जाननेमें मन और वाणीकों आदिलेकर कोई कारण नहीं है.

प्रश्नः–इसविषे प्रमाण क्या है ?

उत्तरः–स्मृति प्रमाण है ॥ **जातिगुणक्रियासंबंधाः शब्दप्रवृत्तिनिमित्तचतुष्टयं शब्दप्रवृत्तिनिमित्तानां तेषां ब्रह्मण्यसत्वेन तस्मिन् शब्दाऽप्रवृत्तिरिति विभावनीयम्॥** इसका अर्थ यह है कि, जाति, गुण, क्रिया और संबंध यह चार शब्दकी प्रवृत्तिके निमित्त हैं. शब्दकी प्रवृत्तिके जे निमित्त तिन्होंको तिस ब्रह्मविषे असत्य करके शब्दकी अप्रवृत्ति है इस प्रकार विशेष करके भावना करनेको योग्य है.

प्रश्नः--जाति, गुण, क्रिया और संबंधकों हम समझे नहीं. स्पष्ट करके प्रमाण सहित कहो.

उत्तरः–यथा " **गौः शुक्लो धावति भारवाहः** " इसका अर्थ यह है कि, जैसे जाति कहिये गौ, और गुण कहिये शुक्ल, क्रिया कहिये 'धावति' (दौडै) है और संबंध कहिये ' भारवाह ' (बोझकों) ढोवे है;

ये चार शब्दकी प्रवृत्तिके निमित्त हैं.और जो तैनें कहा कि वेदकों व्यर्थता आती है सो नहीं आती.कारण वेद सगुण पर है और सगुणकोही कहता है, परंतु सगुणके कहनेसे निगुर्णका लखाव होताहै. इदं शब्द करके (प्रत्यक्ष यह है) ऐसा नहीं कहा है परंतु चंद्रशाखा[1]-न्यायकरके कहा है.

प्रश्नः--इस विषे प्रमाण क्या है.

उत्तरः--श्रुति प्रमाण है ॥ **नेति नेतीति शेषितं यत्परं पदं** ॥ इसका अर्थ यह है कि, यहभी नहीं यहभी नहीं ऐसे निषेध करते करतें रहा जो शेष परं-पद है. इससे वेदकोभी व्यर्थता नहीं आई.और आत्मा स्वतः प्रमाण सिद्ध हुवा. यातें शब्द प्रमाण माना है. परंपरा द्वारा सगुणकों निषेध करके निर्गुण शेष रहा. इसमें पुरुषार्थभी सिद्ध होगया और जो पुरुषार्थ नहीं

---

१ यह शाखामें चंद्र है ऐसे दिखानेसे प्रथम शाखा दिखाकर फेर चंद्र दिखाना और चंद्र दिखानेंमेंही तात्पर्य है. इसकों चंद्रशाखा-न्याय कहते हैं.

मानें तो प्रारब्धके उपर ज्ञान रहा सो प्रारब्धसे ज्ञान होय तो ज्ञानकांड मारा जायगा. ज्ञानकांड मारे जानेसे वेदकों व्यर्थता आई.

प्रश्नः--ज्ञानकांड मारा जाय तो मारा जाय, और वेदकोंभी व्यर्थता आवें. कारण वेदभी संघात ही है. और जो तुम कहो वेद चैतन्य है तो एक चैतन्य है और दूसरा वेद चैतन्य हुवा ऐसे होनेसे द्वैतापत्ति हुई. इससे जो वेदकों मानते हो तो वेदका कर्ता ईश्वर है तो तिस ईश्वरकों नहीं मानते.

उत्तरः—रे वादी! हम ईश्वरकोंभी नहीं मानते और हमारे द्वैतापत्तिभी नहीं होती अद्वैतही सिद्ध होता है. और जो हम ईश्वरकों माने तो ईश्वरके सत्य माननेमें संपूर्ण प्रपंचकों सत्यता आवे है कारण सच्चेका रचा सच्चाही हुवा चाहिये.

प्रश्नः—ईश्वर तो ध्यानादिक व्यापार करके ब्रह्मस्वरूपही प्राप्त होता है. तुम कैसे कपोलकल्पित अभाव करो हो?

उत्तरः–हम कपोलकल्पित नहीं मानते हैं, तो श्रुति प्रमाण है ॥ **यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतं तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥** इसका अर्थ यह है कि जो मन करके न जाना जाय और जिसकरके मन जानिये ऐसा कहे हैं तिसहीकों तूं ब्रह्म जान.और जो इदंकरके उपासना करता है सो ब्रह्म नहीं है इस्को आदि लेकर अनेक श्रुतियां हैं.

प्रश्नः--जो तुम ईश्वरकों नहीं मानते तो वेदकों क्यों मानते हो ?

उत्तरः–वेद तो प्रपंचके निषेधपर है, और केवल ज्ञानमात्रकों कहता है.

प्रश्नः--वेद ज्ञानमात्रहीको किसप्रकार कहता है? कर्म उपासनाकोंभी तो कहता है ?

उत्तरः--हम कर्म और उपासनाकों साधन कोटीमें मानते हैं.

प्रश्नः--इस विषे कोई दृष्टांत कहो.

उत्तरः--**दृष्टांत** कहते हैं. जैसे कीसी पुरुषने अपने स्थानमें राजाकों बुलावनेकी इच्छा करी. सो प्रथम उसनें स्थानकों बुहारा और पीछे गद्दी तकिया लगाया तब राजा आयकर बैठा. अब **दार्ष्टांत** कहते हैं कि, मुमुक्षुरूपी पुरुषनें ज्ञानरूपी राजाको बुलावनेंकी इच्छा करी, तब बुद्धिरूपी स्थानमें कर्मके करने रूपी तो बुहारी दीनी. और उपासना रूपी गद्दी तकिया लगाया है, तब ज्ञानरूपी राजा आयकरके बैठा. इसी कारणसे हम वेदकों मानते हैं जो वेदकों नहीं मानें तो श्रवणादिक मारे जायं और श्रवणादिक विना ज्ञान होता नहीं; इससे वेदकों व्यर्थता आवेगी.

प्रश्नः--वादीनें कहा कि हम वेदकों नहीं मानते; वेदसे क्या प्रयोजन है?

उत्तरः--अच्छा.जो तूं वेदकों नहीं मानता तो अपने आपकों माने हैं? **वादी**ने कहा कि,हां आपकों माने हैं. **सिद्धांती**ने कहा कि,भला जो आपकों मानैं हैं तो

बताव तूं कौन है. **वादीने** कहा कि, मैं देह हूं. तब **सिद्धांतीने** कहा कि,देह तो पंचभूतोंका विकार है, जड है, अनित्य है और दृश्य है. फेर **वादीने** कहा कि, मैं इंद्रियां हूं. **सिद्धांतीने** कहा इंद्रियांभी अपंचीकृत पंचभूतोंका कार्य, दृश्य और जड हैं. पंचभूतोंके सत्वगुणअंशसे ज्ञानइंद्रियां और रजोगुण अंशसे कर्मइंद्रियां हुई हैं. फेर **वादीने** कहा कि, मैं प्राण हूं. तब **सिद्धांतीने** कहा कि, प्राणभी पंचभूतोंके समष्टि रजोगुण अंशसे भये हैं. और अदृश्य अनित्य जड हैं और प्राण पांच हैं और तूं एक है. और प्राण कर्मोंके आधीन हैं. तब **वादीने** कहा मैं मन हूं. **सिद्धांतीने** कहा कि, मनभी पंचभूतोंके समष्टि सतोगुणअंशसे उत्पन्न हुवा है. याहीतें दृश्य है जड है और अनित्य है. तब **वादी** बोला कि, मैं आपकों नहीं जानता कि, क्या हूं. **सिद्धांतीने** कहा कि भला, तूं आपकों तो नहीं जानता, परंतु भावरूप कुछ वस्तु तो है? तूं

अभावरूप तो नहीं? वादीनें कहा कि, हां हूं कुछ तो सही. तब सिद्धांतीने कहा कि, नहीं जानना (अज्ञान) सोई कारण है. तिसका जाननेवाला तूंही है. तेरे होनेविषे वेद प्रमाण है सोई कहते हैं. ॥ **प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म । अयमात्मा ब्रह्म** ॥ इसका अर्थ यह है कि, शब्दस्पर्शरूपरसगंधकों जो प्रकाशे सो आनंद ब्रह्म है. यही आत्मा ब्रह्म है.

प्रश्नः—वादीनें कहा कि देखलो, फेर वेद प्रमाण आया, स्वतः प्रमाण नहीं बना.

उत्तरः—वेद शब्दादिकोंका साक्षी है; इदं करके तो नहीं कहता कि क्या रूप है.

यह स्वतःप्रमाण परतःप्रमाणके निर्णयकी
चवुर्विंशतितमी युक्ति संपूर्ण हुई॥२४॥

ॐ

अहेडीदृष्टांतसे तत्त्वज्ञानोपदेश निर्णयकी युक्ति।

अब अहेडीके दृष्टांतसे तत्वज्ञानके उपदेशके निर्णयकी पचीसवी युक्ति कहताहूं—इसमें प्रथम **दृष्टांत** कहते हैं. एक अहेडी शिकार लेकरके राजाके पास गया और राजाकों कहा कि, मैं तुम्हारे पास शिकार लेकर आयाहूं; आप चलकर शिकारकों मारिये. तब राजानें शिकार मारनेकी इच्छा करी और रथ मंगवाया. और उस रथको घोडे जोडे और सारथी बैठ गया; फिर धनुष्य और बाण लेकर रथमें बैठा और वागडोर पकड लीनी. और अहेडीकों पूछा कि क्या शिकार है और कहां है? उसने कहा महाराज! हिरनी है और यह तुम्हारे सन्मुख है. तब राजानें क्या किया

कि धनुष्यके उपर चिल्ला चढाकरके बाण मारा; बाणके मारतेही हिरनी स्वर्णकी होगई. और दोय बच्चे दे दिये, और दोनों बच्चे कूदने लगे. उस हिरणीका जो आश्रम था सो पत्थरका होगया,और उसका सब कुटुंब मरगया. और उसके माता पिताका खोज नहीं पाया. और जो बाण हरनीको मारा था सोई बाण उलटके राजाकों लगा और राजाका रथ लय हो गया.और वह अहेडीभी मर गया.और राजाकी जो सेना थी सोभी मर गई और जो देखनेवाले आये थे सो सब भाग गये, इतनेमें गुरु चेले दो आगये. और चेलेनें गुरुके चरण पकडे. चरण पकडते ही गुरु उडा और गुरुके साथ चेलाभी उड गया ऐसा स्वप्न भया.

अब **दार्ष्टांत** कहते हैं.अहेडीरूपी मुमुक्षु व्यवसायात्मिक बुद्धिरूपी शिकार लेकर आया और राजास्थानी गुरुके सन्मुख खडा हुवा और शिकार बतावने रूपी प्रश्न किया,तब राजारूपी गुरु संघातरूपी रथमें बैठ करके समाधानको प्राप्त हुवा. क्योंकि, संघातरूपी

रथमें इंद्रियांरूपी घोडे हैं और बुद्धिरूपी सारथी है और मनरूपी वागडोर हैं और विषयस्थानी मार्ग है. जब गुरुरूपी राजाने वेदरूपी धनुष्य हाथमें लिया तब दशों उपनिषद्रूपी चिल्ला चढाया, विचाररूपी बाण और युक्तिरूपी भाल है जिसमें ऐसे तत्वज्ञान रूपी बल लगाय करके व्यवसायात्मिक बुद्धिरूपी हिरनीकों बाण मारा. बाण मारनेस्थानी उपदेश किया. उपदेश करतेही कंचनरूपी शुद्ध हो गई. ज्ञान और वैराग्यरूपी दो पुत्र भये, सो पुत्र आनंदरूप कूदें हैं. उस बुद्धिका आश्रम जो अंतःकरण था सो पत्थर स्थानीं संकल्प[१] विकल्प[२] रहित होगया और इंद्रियां प्राण मन और देहरूपी बुद्धिका कुटुंब सब मरगया. और अविद्यारूपी माता और अविचाररूपी पीता दोनोंका ठिकाना नहीं लगा अर्थात् दोनोंका अभाव हो गया; जो होते तो पावते. जो विचाररूपी बाण व्यवसायात्मिक बुद्धिकों मारा था सोई बाण गुरुरूपी राजामें लय

---

१ मनकी गति. २ संशय अथवा अज्ञान

(गुरु यथास्थित) होगये; और राजाके रथके लय होने स्थानी गुरु समाधिस्थित होगये और अहेडीरूपी मुमुक्षुका अहंकार मरगया. जिसकों जीव कहे और गुरुरूपी राजाकी सेना स्थानीं श्रवण मनन निदिध्यासन रूपी सेना लय हो गई,और शिकारके देखनेवाले स्थानीं अन्य शास्त्रवादी सब भागगये अर्थात् उनका सिद्धांत नहीं बना.इस विचारमें दो गुरुशिष्यरूपी विकल्प आये थे सो शिष्यनें प्रश्नरूपी हाथ करके ब्रह्मरूपी श्रद्धा करी सोई चरण पकडे. सो गुरुशिष्यके उडनेरूपी दोनोंके व्यवहार लय होगये. ऐसा व्यवहार अज्ञानरूपी स्वप्नमें होता है.

प्रश्न–बुद्धि तो अनेक विकल्पोंकरके अनेक होती है. एक बुद्धिका प्रमाण कहांहै.

उत्तरः–गीतामें भगवान्का वचन प्रमाण है ॥व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनंदन॥बहुशाखा ह्यनंताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ इसका अर्थ यह है कि, हे अर्जुन! व्यवसायात्मिक बुद्धि शुद्ध सतो

गुणी इस जगतमें एकही है. और पुरुषार्थ रहित पुरुषों-की बहुत अनंत शाखा हैं, जिनकी अनंत बुद्धियां हैं.

प्रश्नः--ज्ञानी पुरुषको यह संघातरूपी सामग्री काहेतैं उदय हुई और इसमें प्रणाण क्या है?

उत्तरः—विवेकीके संचित कर्म ज्ञान रूपी अग्निकरके नाश हो गये. और तिनके संग ज्ञानके पूर्वकालमें इस देह विषे किये हुवेभी नाश होगये. और ज्ञानके उत्तर-कालके कर्म ज्ञानीकों स्पर्श करतेही नहीं. कारण संचित कर्म अज्ञानके आश्रय थे और क्रियमाण कर्म अहंकारके आश्रय होते हैं. सो अहंकारका नाश हो गया, इससें स्पर्श नहीं करते और प्रारब्ध कर्म देहके आश्रय हैं इससे ज्ञानीके दृष्टीमें मिथ्याभास है सो मुमुक्षुके प्रश्न करनेसे संघात उदय होगया. और प्रमाणभी श्रवण कर ॥ **ज्ञानिनो ब्रह्मात्मज्ञाने जाते तेन बाधितस्यापि संचितकर्मणः प्रारब्धफलस्य कर्मणोऽबाधित्वं अत एव ज्ञानिनस्तु प्रारब्धवेगवशात् देहादि**

प्रतिभासते ॥ इसका अर्थ यह है कि, ज्ञानीकों ब्रह्मात्मज्ञान प्राप्त होनेसे तिस ज्ञानकरके नाश हुवेभी संचित कर्म प्रारब्ध फल कर्मोंका अबाधित्व है, याहीतें ज्ञानीकों तो पुनः प्रारब्ध वेगके वशसें देहादिक भान होते हैं.

प्रश्नः--तो ज्ञानीको कुछ अपेक्षा रही है. जो शिष्यकों उपदेश करता है.

उत्तरः—ज्ञानीकों तो कुछभी अपेक्षा नहीं है.शिष्य-प्रश्नको श्रवण करके उपदेश करता है.

प्रश्न—कोई दृष्टांत कहो तो तुम्हारा मानें.

उत्तरः--**दृष्टांत** कहते हैं. जैसे नगारेकों बोलनेकी अपेक्षा नहीं है और शब्दकरके रहित भी है परंतु कोई डंका मारे तो शब्द होता है. **दार्ष्टांत** कहते हैं तैसेही नगारेरूपी ज्ञानी पुरुष अपेक्षा रहित स्थित है,परंतु कोई मुमुक्षुरूपी पुरुष प्रश्नरूपी डंका मारे तो ज्ञानिरूपी नगारेसे शब्द होता है. प्रश्नके विना तो निर्विकल्पही स्थित है और जो तैनें प्रमाण पूछा था सोभी कठवल्लीमें कहाहै

सोई श्रुति कहतेहैं॥आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ १ ॥ इंद्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्॥आत्मेंद्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ इसका अर्थ यह है कि, तू आत्माकों रथी जान, शरीरकों रथ जान, बुद्धिकों सारथी जान, मनको वागडोर जान, इंद्रियोंको घोडे जान और विषयरूपी मार्ग जान. शरीर, इंद्रियां और मन इन करके सहित आत्माकों संसारी कहते हैं. विवेकी इस प्रकार श्रुति कहते हैं.

यह अहेडीके दृष्टांत दार्ष्टांतविषे तत्वज्ञानके
उपदेशके निर्णयकी पंचविंशतितमी
युक्ति संपूर्ण हुई ॥२५॥

ॐ

ज्ञानस्वरूपप्राप्तिकी युक्ति ।

अब प्रारब्ध पुरुषार्थ सगुण निर्गुणके निर्णयविषे ज्ञान स्वरूपके प्राप्तिकी छवीसवी युक्ति कहता हूं-- एक पुरुषनें प्रश्न किया कि महाराज ! प्रारब्ध बडा है कि पुरुषार्थ बडा है? और सगुणकी उपासना बडी है कि निर्गुणकी बडी है?

सिद्धांतीनें कहा कि तेरे प्रश्नोत्तरको हम जानते नहीं परंतु तुझकों एक वार्ता कहताहूं; तूं बुद्धिमान् होय तो समझ लीजो. सोइ वार्ता कहता है.

दृष्टांत एक किसान वनमें हल जोतता था, सो खेतमें लाल निकस आये. उन लालोंको देख करके किसानने जाना कि, खेतमें अग्नि लग गया. ऐसा जानकरके हाथ लगाय कर देखा तो कि अग्नि तो

नहीं है परंतु पत्थर हैं. सोई निकाल निकालकर खेतसे बाहर फेंकता था, इतनेमें कोई जौंहरीं आगाया; उसनें देखा कि लाल तो बडे उत्तम हैं, परंतु लालोंवाला मूढ है; फेर जौंहरीनें किसानकों पूंछा, तूं क्या करता है तब किसानने कहा कि, खेतमें पत्थर हैं तिनको बाहर गेरूं हूं. तब उस जौंहरीनें कहा कि, मैं भी इनमेंसे ले लूं? तब किसाननें कहा कि, मनमाने ते उठा लेवो. तब जौंहरीनें कुछ लाल लेकर किसी राजाको भेट दीनी. वह राजा लालोंको देखकर बहुत प्रसन्न हुवा; और कहा कि. ऐसे लाल औरभी लाव. तब जौंहरीनें कहा कि, महाराज! एक महान् राजा है तिसके मंदिरमें ऐसे अनेक लाल हैं, जो वह देवेगा तो तिससें मैं माग लाऊंगा; तब राजानें कहा कि, ऐसे लालों करके संपन्न राजा है तिसकों मैं अपनी पुत्री देऊंगा. तब जौंहरीनें कहा कि, महाराज! जो तुम संबंध करो तो मुझे वचनप्रसाद दो. तब राजानें प्रतिज्ञा करी कि, ऐसे पुरुषकों मैं अवश्य पुत्री दूंगा. तब जौं-

हरी उस किसानके पास आया; और उसका हल जोतना छुडा दिया, फिर अपने घरमें लेगया और लाल बहुतसे समेट लिये. फिर तिस किसानकों विद्या पढाई और अच्छे वस्त्र और भूषण पहराये, और हाथी घोडोंपर चढना सिखाया और राजाको मिलने लायक बनाय करके बहुतसी सेनासाथ लीनी; और वरातकों चढाय करके लालोंकों लुटावता हुवा उस राजाके पास पहुंचा. तब उस राजानें विधिपूर्वक अपनी आनंदमती नामक पुत्री दीनी. तिस पीछे विवाहके तीन दिन व्यतीत भये तब चतुर्थीकर्मके अर्थ राजमहलमें बुलाया. तब जौंहरीने किसाननाम राजाकों समझाया कि, तूं किसीसें बोलो मत, और जो कुछ करो सो विचार करके करो; तब सुखकों पावेगा. तब वह किसान नाम राजा महलमें गया तिसवखत एक सखी साथ हुई. जिस महलमें अनेक सामग्री करके संयुक्त है ऐसे अनेक प्रकारके चित्राम बनै हैं, तिनको देखता हुवा जा बैठा. तिस चित्राममें

एकस्थानमें एक कूप चलता हुवा बनाया था, तिसकों देख करके मंद मुसकाया. यह वार्ता सखीनें मनमें रखके जाना कि यह कुलका नीचा है. सोई राजाकी पुत्रीकों कह दिया. और पीछे किसान नाम राजा चित्रशालामें जाकर बैठा, तब राजाकी पुत्री संपूर्ण शृंगार करके और चतुरमुख दीपक प्रज्वलित है जिसमें ऐसा थाल लेकरके सन्मुख आई. तिसकों देख कर किसान नाम राजानें ऐसा वचन कहा,हाय! मुझकों भक्षण किया. ऐसा कहकरके छज्जेकों पकडकरकें नीचे लटक गया. तब वह राजाकी पुत्री थाल ऊंधा पटकके चली, इतनेमें इस पुरुषको विचार उपजा कि यह तो मेरी ही स्त्री है, ऐसा समझकरके उपरकों चढ आया, और तिस स्त्रीकों पकड करके अंगकों लगाय लीनी तब सुखकों प्राप्त हुवा.

अब **दार्ष्टांत** कहते हैं, कि जीवरूपी किसान संसाररूपी वनमें हल वाहनेरूपी कर्म करने लगा. कर्म करते हुए तिस पुरुषकों संस्काररूपी बहुतसे लाल

कर्मभूमीमें उदयकों प्राप्त हुए. तिनकों देख करके ऐसा जाना कि अग्निके लगनेरूपी कर्मोंका लोप हो गया. फेर देखनेरूपी विचार करके समझा कि,कर्मोंका तो लोप नहीं हुवा. परंतु पत्थररूपी विघ्न उदय हुए हैं. सो वह पुरुष लाल रूपी संस्कारोंको कर्मभूमीमेंसे बाहर गेरनेरूपी तिरस्कार करता भया.

प्रश्नः—कर्मोंसे तो संस्कार महान् है तिनका तिरस्कार कैसे किया ?

उत्तरः—रे भाई! कर्मेंष्टी संस्कारका सार क्या जानें? कारण चैतन्य अज्ञानोपहित है और कर्म अज्ञानका कार्य है. इससे इतनेमें गुरुरूपी जोंहरी आया; तिसनें देखा, इसके संस्कार रूपी लाल तो उत्तमरूपी उजल हैं, परंतु इसकी बुद्धि तो मूढ है ऐसा जानके पूछा कि तूं क्या करता है इस पूछनेमें चित्तकी स्थिति कर्मोंविषे है कि नहीं ऐसा निर्णय करे है; तब किसाननें कहा कि, खेतमें पत्थर हैं तिनको बाहर गेरूं हूं. इस करके किसानरूपी जीवनें यह कहा कि, कर्मोंमें विघ्न

उदय हुये हैं, तिनको निवृत्त करूं हूं. तब जौंहरीरूपी गुरूनें कहा कि मैंभी इनमेंसे लेनेरूपी ग्रहण करूं. तब किसानरूपी कर्मेष्टीनें कहा कि, तुम उगवनेरूपी मेरे विघ्नोंको निवर्तन करो. तब जौंहरीरूपी गुरुनें कुछेक लालरूपी संस्कार लेनेरूपी समझ करके किसी राजाको भेट देनेरूपी ईश्वरकों सुनायें, तब ईश्वररूपी राजा लालरूपी संस्कारोंकों देखनेरूपी समझके बहुत प्रसन्न हुवा. और कहाकि, ऐसे लाल और भी लाव. इसकरके यह कहा कि, ऐसे संस्कार औरभी बनावो. तब जौंहरीरूपी गुरुनें कहाकि, हे महाराजरूपी ईश्वर! एक महान् राजारूपी कर्मेष्टी है. तिसके मंदिररूपी कर्मभूमीमें ऐसे अनेक लालरूपी संस्कार हैं; जो वह देगा तो तिससें मैं मांग लाऊंगा.इस करके यह कहा कि,जो इस्की इच्छा होगी (इच्छारूपी पुरुष पुरुषार्थ करेगा) तो तिसके औरभी संस्कार आपके सन्मुख करूंगा. तब राजारूपी ईश्वरनें कहा कि, ऐसे लालोंरूपी संस्कारोंकरके जो संपन्न राजारूपी कर्मेष्टी है तिसकों

अपनी पुत्रीरूपी मुझ परमेश्वरकों विषय करनेवाली व्यवसायात्मिका बुद्धि देऊंगा तब जौंहरीरूपी गुरुनें कहा कि, हे महाराजरूपी ईश्वर! जो तुम संबंधकरनें रूपी उसकों भक्ति देवो तो मुझकों वचन प्रसादरूपी आज्ञा देवो. तब ईश्वररूपी राजानें प्रतिज्ञाके करनेरूपी निश्चय किया कि, ऐसे मुमुक्षुरूपी पुरुषकों अवश्य व्यवसायात्मिका बुद्धिरूपी पुत्री देऊंगा.

प्रश्नः—इसप्रकार ईश्वरकी प्रतिज्ञा कहां कही है? ईश्वर तो आप्तकाम है.

उत्तरः—गीतामें कहा है, सोई कहते हैं ॥ ये तु **सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ॥ अनन्येनैव योगेन मां ध्यायंत उपासते ॥ १ ॥ तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ॥ भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्** ॥ २ ॥ इसका अर्थ यह है कि, मुझ परमेश्वरमें संपूर्ण कर्मोंको समर्पण करके,मेरा ध्यान करते हुए और अनन्य योग (एकांत भक्ति) करके

जे उपासना करते हैं; ऐसे कहे हुए प्रकारकरके मुझमें स्थित किया है चित्त जिह्नोंने तिह्नोंको मृत्युकरके सहित संसारसागरसें मैं भले प्रकार उद्धारकर्ता शीघ्र होऊंगा, इसप्रकार ईश्वरने प्रतिज्ञा करी है. तब जौंहरीरूपी गुरु उस किसानरूपी कर्मेंष्टीकेपास आया और उसके हल जोतनेरूपी कर्मकों छुडाया. फेर अपनें घररूपी विचारमें लेजानेरूपी लगा; और बहुतसे लालोंरूपी संस्कारोंको समेट करके फेर तिस किसानरूपी कर्मेंष्टीकों विद्या पढावनेरूपी श्रवण कराया. और अच्छे वस्त्र और भूषणोंरूपी नवविधा भक्ति कराई. और हाथी और घोडोंपर चढावनेरूपी भक्तीका यश दिखाया, और राजारूपी ईश्वरके मिलानेरूपी सन्मुखके लायक बनावनेरूपी स्थित किया. और बहुतसी सेनारूपी विनयता और शीलकों आदिलेकर संग लीनी, और बरातके चढावनेरूपी मुमुक्षुताकरके सहित लालोंके लुटावनेरूपी वैराग्य करके संपन्न ऐसे मुमुक्षुकों राजारूपी ईश्वरके पास पहुँचावनेरूपी सन्मुख

किया; तब ईश्वररूपी राजाने विधिपूर्वकरूपी संप्रदायपूर्वक अपनी आनंदमती नामक व्यवसायात्मिकारूपी पुत्री दीनी. तिस पीछे विवाहके तीन दिन वीत गये अर्थात् व्यवसायात्मिक बुद्धिके सन्मुख होने करके मुमुक्षुकों श्रवण मनन और निदिध्यासन तीनों भये? तब चतुर्थी कर्मरूपी साक्षात्कारके अर्थ राजमहल रूपी मुक्ति विषे बुलाया.तब जौंहरीरूपी गुरुनें किसान नाम राजारूपी मुमुक्षुकों उपदेश किया. और कहा कि, तूं किसीकों बोलियो मत इसकरके यह कहा कि ब्रह्म स्वरूप अनिर्वचनीय है और वृथा वचनभी कहना योग्य नहीं है.

प्रश्नः—वचन विना तो कुछ कार्य बनता नहीं.जैसा तुम कहते हो ऐसा कहां कहा है? हमारे तो शास्त्र प्रमाण है सोई कहते हैं. ॥ **सर्वेषां संग्रहः कार्यः कः कालः फलदायकः** ॥ इसका अर्थ यह है कि, संपूर्ण वस्तुओंका संग्रह करना योग्य है. कोई पदार्थ किसी कालमें फल देता है.

उत्तरः–रे वादी! हमारी श्रुति प्रमाण है ॥ **नानुध्यायान् बहून् शब्दान्वाचो विग्लापनं हि तत्** ॥ इसका अर्थ यह है कि, निश्चयकरके वेदांत शास्त्रसे अन्य बहुत शास्त्रोंको मत पढ. तिन अन्य शब्दों से वाणीकों वृथा प्रलाप होवेगा और कहाथा जो कुछ करे सो विचार करके करो, इसकरके यह कहाकि, चैतन्य मात्रकाही विचार करो. तबआनंदरूपी सुखकों प्राप्त होवेगा. तब वह किसान नाम मुमुक्षुरूपी राजा महलरूपी मुक्तिविषे गया. और एक विचारात्मकरूपी सखी साथ हुई. और अनेक प्रकारके अध्यारोपरूपी चित्राम और सामग्री करके संयुक्त है. महलरूपी मुक्ति है, तिनोंमें अनेकप्रकारके अध्यारोपोकूं देखनेरूपी विचारता हुवा. चलनेरूपीवृत्तिकों चढावता था. तिसें चित्रामविषे एकस्थानमें एक कूप चलता हुवा बनाया था, तिसकों देख करके मंद मुसकाया. इसकरके यह कहाकि, अध्यारोपमें कितनेक कर्मके फलकी याद आई. तिसका विचार करके चित्तमें ऐसा स्फुरण हुवा कि, यह

कर्मोंकाही फल है; इससे प्रसन्न हुवा. तब यह वार्ता-रूपी व्यवहार विचारात्मिक सखीनें याद रखने-रूपी ग्रहण करा. और जाना कि, यह मुमुक्षु कुलके नीचे स्थानी कर्मफलकों चाहता है. ऐसा वृत्तिमें निश्चय हुवा. सोई राजाकी पुत्रीरूपी व्यवसायात्मिक बुद्धिमें कहनेरूपी स्थित किया. और मुमुक्षुरूपी राजा चित्रशालारूपी मुक्ति मंदिरमें बैठने स्थानी स्थित भया और यह विचारा कि, ऐसा सुख उपासनासे होता है. मुक्तिरूपी चित्रशाला ब्रह्मलोकको कहते हैं. कारण सालोक्य[1], सारूप्य[2], सामीप्य[3] और सायुज्य[4] ऐसे चार प्रकारकी मुक्ति उपासनामें कही है. ऐसा आश्रम ब्रह्मलोकके तुल्य ज्ञानीकों होता है.

प्रश्नः—अच्छी कपोलकल्पित स्तुति बनाई अपनें घर-कों सभी उत्तम कहते हैं. प्रमाण विना हम नहीं मानैं.

---

१ समान लोकमें रहना अर्थात् ईश्वरके लोकमें वास करना. २ एक-सरूपता अर्थात् ईश्वरभिन्न ईश्वरके सदृश रूप होना. ३ ईश्वरके समीप वास करना. ४ ईश्वर और जीव इन दोनोंमें अभेद होना.

उत्तरः—रे वादी! मनुस्मृतिमें कहा है कि ॥ वेद-वेदार्थतत्त्वज्ञो यत्र कुत्राश्रमे वसन् ॥ इहैव लोके तिष्ठन् सन् ब्रह्मलोकाय कल्पते ॥ इसका अर्थ यह है कि, वेद और वेदका जो अर्थ तिसके तात्पर्यकों जाननेवाला पुरुष जिस किसी आश्रममें वसता हुवा इसही लोकमें स्थित होनेसे ब्रह्मलोकके अर्थ योग्य है. तब राजाकी पुत्रिरूपी व्यवसायात्मिका बुद्धि संपूर्ण शृंगाररूपी शुद्धता करके संयुक्त चतुर्मुख दीपक प्रज्वलितरूपी चारों वेदका सारज्ञान है जिसमें ऐसे ज्ञानकांडरूपी थाल करके संपन्न सन्मुख आवनेरूपी उदय हुई. तिसकों देख करके राजारूपी मुमुक्षुनें हाय! मुझे भक्षण किया! ऐसा वचन कहा. इस करके यह कहा कि, मैं वृत्तिका दृश्य हुवा. जो दृश्य होता है सोई परिणामी होता है. यातें अपसिद्धांत हुवा. ऐसा कह करके छज्जेकों पकड करके नीचेकों लटक गया, इसकरके यह अर्थ हुवा कि, मैं मुक्तिरूपी महलसे नीचेकों गिरने लगा कि, मुझें मुक्ति नहीं संभव होवेगी. और छज्जेरूपी अभानावरणकों पकड

रहा है. अभानावरण कहिये आपकों परोक्ष जानना. तब वह राजाकी पुत्रिरूपी व्यवसायात्मिका बुद्धि थाल ऊंधा गेरनेरूपी वेदके सारकों त्यागती भई; और चलनेरूपी मुख फेर गई इस करके अज्ञान सिद्ध हुवा. सोई कहता है " **मामहं न जानामि** " इसका अर्थ यह है कि, मैं आपको नहीं जानता. इसी कालमें मुमुक्षुरूपी राजाको विचारके उपजनेरूपी ज्ञान उदय हुवा. और जाना कि,यह मेरी स्त्री है इसकरके यह अर्थ हुवा कि, मुझमें यह बुद्धि लय होनेवाली है.ऐसी समझरूपी विचार करके उपरकों चढ आवनेरूपी ज्ञानात्मक स्थित हुवा और व्यवसायात्मिक बुद्धिरूपी स्त्रीकों अंगसे लगावनेरूपी ऐक्यताकों प्राप्त करी,नीचेकों लटकना सोई अज्ञान है. और स्त्रीकों थालके पटकने करके अंधकारका होना सोई अज्ञानमें बुद्धिका लय होना है. तब आप प्रकाशरूप उदय हुवा. तिस विषे संपूर्ण सामग्री करके सहित अविद्या लय होगई. एक स्वयं प्रकाश आत्माही सिद्ध हुवा. तब सुखकी प्राप्तिरूपी परमानंदही स्थित हुवा.

प्रश्नः—इसका प्रमाण कहां है?

उत्तरः—स्मृतिमें कहा है ॥ स्थूलप्रपंचं सर्वमपि स्थूलभूतेषु विलाप्य तद्व्यतिरेकेण तन्नास्तीति निश्चित्य स्थूलभूतानि समष्टिव्यष्टिसूक्ष्मशरीरं च सूक्ष्मभूतेषु विलाप्य तत्रापि पृथिवीमप्सु विलाप्य आपस्तेजसि तेजो वायौ वायुमाकाशे आकाशमज्ञानेऽज्ञानं चिन्मात्रे विलापयेत् ॥ इसका अर्थ यह है कि, संपूर्ण स्थूल प्रपंचकों इस स्थूल भूतोंमें लय करके तिन पंच भूतोंसे भिन्न करके, सो प्रपंच नहीं है ऐसा निश्चय करके स्थूल भूतोंको और समष्टि व्यष्टि सूक्ष्म शरीरकों सूक्ष्म भूतोंमें लय करके, तिनमेंभी पृथिवीकों जलोंमें लय करके, जलोंको तेजमें, तेजको वायुमें, वायुकों आकाशमें, आकाशकों अज्ञानमें और अज्ञानकों चैतन्यमात्रमें विशेष करके लय करे अर्थात् लय भावना करे.इसकों यौक्तिक बाध कहते हैं.यह वेदमें प्रसिद्ध है.जैसे तैने एक वार्ता कही-

थी तैसी मैने भी कही.अब तूनें प्रश्नकाउत्तर जाना ?

प्रश्नः--हे भगवन् ! प्रारब्ध और पुरुषार्थ, सगुण और निर्गुणकी उपासना इसका निर्णय आपने कहा तो सही परंतु मैं नहीं समझा. तुम प्रसिद्ध करके कहो.

उत्तरः--सो निर्णय वर्णन करताहूं—तूं साव-धान मतीसे श्रवण कर. प्रारब्धका फल तो लालोंके निकलनेसे लेकरके राजाकी पुत्री थाल लेकरके आई तिसपर्यंत कहा,और पुरुषार्थका फल छज्जे-से उपर चढनसे लेकर अंगतें लगावना इतने मात्र कहा. जो पुरुषार्थ नहीं करता तो माराही जाता. और सगुण उपासना फल हलरूपी कर्मके छुडावनेसे लेकरके व्यव-सायात्मिकारूपी स्त्रीके सन्मुख होनेपर्यंत कहा. और निर्गुण उपासनाका फल छज्जेसें उपर चढनेकों लेकर वृत्तिके लय होनेपर्यंत कहा है. इसमें पूर्वभा-गकों अध्यारोप जान लेना और उत्तरभागकों अपवाद जान लेना.

यह प्रारब्ध पुरुषार्थ सगुण निर्गुणके निर्णय विषे ज्ञानस्वपरूके प्राप्तिकी षड्विंश-तितमी युक्ति संपूर्ण हुई ॥ २६ ॥

ॐ

श्रवणसे ज्ञान होनेकी युक्ति।

अब श्रवण द्वारा ज्ञान होनेके निर्णयकी सत्तावीसवी युक्ति कहताहूं—कोई एक पुरुष था, तिसकों इस जगतसें दुःख हुवा. सो उसने गुरुके पास जायके प्रार्थना करी कि, हे प्रभु! ऐसी कृपा करो कि, मेरा जगद्रूपी दुःख किसी प्रकार निवृत्त होवे. तब गुरुने विचार किया कि, जगद्रूपी दुःखने इसमें किस द्वारा प्रवेश किया. जो पादेंद्रियद्वारा प्रवेश किया होगा तो तीर्थ करने करके निवृत्त हो जायगा. सो उसकों आज्ञा दीनी कि, तूं तीर्थ यात्रा कर. तेरा दुःख निवृत्त हों जायगा. तब वह पुरुष संपूर्ण तीर्थ यात्रा करके आया. फेर तिसकों गुरुनें पूछाकि, तेरा जगद्रूपी दुःख निवृत्त हुवा या नहीं? तब उस पुरुषनें कहा कि, महाराज! मैं

तो बडा दुःखी हूं! मेरा दुःख तो नहीं निवृत्त हुवा. तब गुरुनें विचार किया कि, पादेंद्रियद्वारा जगतनें प्रवेश नहीं किया था.फेर गुरुनें उसकों कहा तूं दान कर.दान करनेसे तेरा दुःख निवृत्त होगा. तब उसनें सर्व दान किया. फेर गुरुनें उससे पूछा कि,तेरा दुःख निवृत्त हुवा? तब उस पुरुषनें कहा कि, मेरा दुःख नहीं निवृत्त हुवा. तब गुरुने जाना कि, पाणिइंद्रिय-द्वारा भी जगतने प्रवेश नहीं किया था तब गुरुनें इस पुरुषतें जप करवाया कि कदाचिद्वा-णीद्वारा प्रवेश किया होगा तो निवृत्ति होजायगी. तब उसने जप किया.फिर गुरुनें पूंछा कि, तेरा दुःख निवृत्त हुवा? तब उसने कहा महाराज ! मेरा दुःख निवृत्त नहीं हुवा. तब गुरुने विचार किया कि, वाणीद्वारा जगतनें प्रवेश नहीं किया. फेर गुरुने कहा कि, ध्यान-कर. कदाचित् नेत्रद्वारा प्रवेश किया होगा तो निवृत्त होजायगा. सोई इस पुरुषनें संपूर्ण देवतावोंका ध्यान किया. फेर गुरुनें पूंछाकि, तेरा दुःख निवृत्त होगया ?

तब उस पुरुषनें कहा कि, मेरा दुःख निवृत्त नहीं हुवा. तब गुरुनें निश्चय किया कि, नेत्रद्वारा जगतनें प्रवेश नहीं किया था. फेर इस पुरुषकों कहा कि, कुछ चांद्रायणादिक व्रत कर. कदाचित् रसनाद्वारा प्रवेश किया होगा तो निवृत्त होजायगा. सो उस पुरुषनें कृच्छ्र चांद्रायणादिक व्रत किये. फेर गुरुनें पूछा कि, तेरा दुःख निवृत्त हुवा ? उसने कहा कि, मेरा दुःख निवृत्त नहीं हुवा. तब गुरुने विचार किया कि, रसनाद्वारा जगतनें प्रवेश किया नहीं.फेर उस पुरुषकों कहा कि, तूं पंचाग्नि तप कर. कदाचित् त्वचा द्वारा प्रवेश किया होगा तो निवृत्त हो जायगा. तब उस पुरुषने पंचाग्नि तप किया.फिर गुरुनें पूछा कि, तेरा दुःख निवृत्त हुवा? उस पुरुषनें कहाकि,महाराज! मेरा दुःख नहीं निवृत्त हुवा. फेर गुरुनें निश्चय किया त्वचाद्वाराभी जगत्नें प्रवेश नहीं किया. तब गुरुनें कहा अष्टांग योग कर. कदाचित् घ्राण–पायू–उपस्थ द्वारा जगत्नें प्रवेश किया होगा. तो निवृत्त होजायगा. फेर उस पुरुषनें अष्टांग योग

किया. तब गुरुनें पूछा कि, तेरा दुःख निवृत्त हुवा ? उसनें कहा कि, महाराज ! मेरा दुःख नहीं निवृत्त हुवा. तब गुरुनें विचार किया कि, इन तीनों द्वारकरकें भी जगतनें प्रवेश नहीं किया है. तब गुरुनें ऐसा निश्चय किया कि, कर्णेंद्रिय द्वारा जगतनें प्रवेश किया है इससे उस पुरुषकों कहा कि, तूं श्रुति इत्यादिक श्रवण कर, तेरा दुःख निवृत्त हो जायगा. फेर उसकों श्रुति, स्मृति, युक्ति, दृष्टांत दार्ष्टांतिक श्रवण करवाया. फेर उस पुरुषकों पूंछा कि, तेरा दुःख निवृत्त हुवा ? तब उस पुरुषनें कहा कि, महाराज ! आपकी कृपासें अब तो परमानंदकों प्राप्त हुवा.

प्रश्नः—वादी कहता है. तुमनें जो कहा कि, जिस द्वारा प्रवेश करता है तिसी द्वारा होके निकल जाता है. इसमें प्रमाण क्या है?

उत्तरः-इसमें शब्द प्रमाण है.“तत्वमस्यादिक”वाक्य और एक दृष्टांतभी कहते हैं. जैसे एक घरको एक द्वार था, और खिडकियां बहुत थीं. उस घरमें ऊंटनें

प्रवेश किया सो उसको घरसें बाहेर करिये तो जिस द्वारा प्रवेश किया है उसी द्वारा निकसेगा औरद्वारा नहीं निकसेगा. कारण और द्वार छोटे हैं इसप्रकार दार्ष्टांत जानलेना.

प्रश्नः—इस तुम्हारे कहनेमें श्रवण इंद्री बडी हुई. सो श्रवण इंद्री किस प्रकार बडी है?

उत्तरः—रे भाई! सुन. श्रवण इंद्री इसप्रकार बडी है कि, वैकुंठ ठौर कैलास ब्रह्म लोंकादिक लोकोंका अनुभव करता है, और किसी इंद्रीकी सामर्थ्य नहीं है.

प्रश्नः—तुम कहते हो कि, श्रवण इंद्री द्वारा जगतने प्रवेश किया है इस विषे प्रमाण क्या है?

उत्तरः—दृष्टांत रूप युक्ति प्रमाण है. सोई कहते हैं कि, एक राजा था. तिसनें अपनें मंत्रिकों कहा कि, कितनेक पुरुषोंकी बुद्धि स्वतः ही विचित्र होती है. तब मंत्रीनें कहा कि महाराज! बुद्धि स्वतः विचित्र नहीं होती है, विचित्र बनावनेसे विचित्र होती है. फिर राजानें कहा कि नहीं, स्वतःही विचित्र होती है. फिर

मंत्रीने कहाकि, बनावनेसेही बिचित्र होती है. राजानें कहा कि, हम कैसे जानें कि, बनावनेसे बनती है. तब मंत्रीने कहा कि आप अपना कुमार बारह बरसतक हमकों दीजिये. तब राजानें कहा कि, ले जावो. सोई मंत्री राजाके कुंवरकों लेगया. और एकांत भवरेमें बैठा दिया कि, किसी पशु पक्ष्यादिकोंकाभी शब्द नहीं सुना जाय. और दो स्त्री उसकी टहलकों रख दीनी और उन स्त्रियोंकों कहा कि, तुम दोनों एकही समय न जाना भिन्न भिन्न जाना और खानपानकी सुध लेती रहना. और मुखसें बोलना नहीं. और उसकों बाहर निकसनें न देना. सो इसही प्रकार उस लडकेके बार बरस व्यतीत भये. किसीका शब्द नहीं सुनाया. एक किंवाडके खुलनेका शब्दही सुना. तब एकदिन मंत्री उस लडकेके पास गया. सो लडका मंत्रीकों देखके डरा. तब मंत्री उसका हाथ पकडके भंवरेके बाहर लाया तब चांदना देखके नेत्र मूंदने लगा औरभी डरा. फेर उसकों राजाके पास ले गया. और कहा कि, ये तुम्हारे

पीता हैं, इन्कों नमस्कार करो. तब उस लडकेनें ‘ चूं ’ कहा. फेर मंत्रीने कहा कि ये तुम्हारे पिता हैं, इनके गोदमें बैठो. फेरभी लडकेनें ‘ चूं ’ कहा. तब राजानें कहा कि, क्या वार्ता है. तब मंत्रीने कहा कि, महाराज ! आपका कुंवर है. आप कहतेथे कितनेक पुरुषोंकी बुद्धि स्वतः विचित्र होती है. सो इसका तो बडा प्रारब्ध है कि, आपके गृहमें जन्म हुवा. फेरभी इस्की बुद्धि विचित्र नहीं हुई. एक किंवाडके खुलनेका ‘ चूं ’ शब्द सुना है, सोई याद है. तब राजानें कहाकि, सत्य है. बुद्धि स्वतः विचित्र तो नहीं होती; परंतु अब इसका क्या उपाय करना? फेर मंत्रीने कहा कि, महाराज ! फेर मुझे बार वर्ष देवो. तब राजाने कहा ले जावो. सोई मंत्री उस लडकेकों ले गया. और चार पंडित उसको पढावनेकों बैठा दिये. और कहा कि, उसकों षट् शास्त्रकों आदिलेके राजनीति, चातुर्यता, संपूर्ण भाषा और व्यवहार सर्व सिखाके बुद्धिवान् बनावो. तब पंडितोंने उसकों महान् पंडित बनाया. तब मंत्री लडके-

कों राजाके पास लेगया. और राजा पुत्रकों मिलके बहुत प्रसन्न हुवा. और अंकपर लिया. फेर राजानें मंत्रीकों कहा कि, तेरा वचन सत्य है, और तूं स्तुतिको योग्य है. इसही प्रकार दार्ष्टांतकोभी युक्तिरूप जान लीजो. इसका क्रम यह है कि, राजाके स्थानीं मुमुक्षु, मंत्रिरूपी गुरु और पुत्ररूपी जीव कहा है.

प्रश्नः--राजारूपी मुमुक्षु और मंत्रिरूपी गुरु ऐसा कहनेमें विरुद्ध आवे. गुरुका पद नीचा कहा और शिष्यका पद उंचा कहा.

उत्तरः--वेदमें राजा जनक और शुकदेवजीका प्रसंग कहा है. तिसमें गृहस्थाश्रमी राजा जनक नीचे पदवाला तिसकों गुरु कहा है. और शुकदेवजी संन्यासी (चौथे आश्रमवाले) थे, तिनकों शिष्य कहा है.

प्रश्नः--वेदमें षट् प्रमाण कहे हैं, तिसमें शब्दहीकों मुख्यकरके मानों हो इसमें प्रमाण क्या है?

उत्तरः—नैष्कर्म्य सिद्धिमें कहाहै ॥ नित्यमुक्तत्वविज्ञानं वाक्याद्भवति नान्यतः ॥ वाक्यार्थस्यापि विज्ञानं पदार्थस्मृतिपूर्वकं ॥ १ ॥ अन्वयव्यतिरेकाभ्यां पदार्थः स्मर्यते ध्रुवम् एवं निर्दुःखमात्मानमक्रियं प्रतिपद्यते ॥२॥ इन दोनोंका अर्थ यह है कि, नित्य मुक्त हूं ऐसा ज्ञान 'तत्त्वमस्यादिक' वाक्यसे होता है, वाक्यके अर्थका ज्ञान निश्चय करके पदार्थकी स्मृति पूर्वक होता है॥१॥ अन्वय और व्यतिरेक दोनों करके पदके अर्थका निश्चय किया जाता है. इस कहे हुए प्रकारसे दुःख रहित आत्मा अक्रियकों प्राप्त होता है. वार्तिककारनेभी कहा है ॥ तुच्छत्वात्तदविद्याया आत्मत्वाद्बोधरूपिणः ॥ शब्दशक्तेरचिंत्यत्वाद्विद्मस्तं मोहदानतः ॥ १ ॥ इसका अर्थ

१ यत्सत्त्वे यत्सत्त्वं "ईश्वर सत्वे जगत्सत्वम्" जो रहनेसे जो रहता है. जैसा ईश्वर है तो जगत् है. २ यदभावे यदभावः "ईश्वरा भावे जगदभावः" जिसका अभाव होनेसे जिसका अभाव होताहै, जैसे मायोपहित ईश्वरका अभाव होनेसे जगतका अभाव होताहै.

यह है कि, तिस अविद्याकों तुच्छत्व होनेसे, आत्माकों ज्ञानस्वरूपसे, शब्दशक्तिकों अचिंत्यत्वसे और अज्ञानके नाश होनेसे तिस आत्मस्वरूपकों जानता है.

प्रश्नः--यज्ञदानादिक मोक्षके अनेक साधन हैं तिनकों त्याग करके एक विचारहीकों मुख्य करके मानते हो, इस्का प्रमाण कहां है?

उत्तरः--श्रीशंकरस्वामीजीनें आत्मबोधमें कहा है कि ॥ **बोधोन्यसाधनेभ्यो हि साक्षान्मोक्षैकसाधनम् ॥ पाकस्य वह्निवज्ज्ञानं विना मोक्षो न सिध्यति** ॥ १ ॥ इसका अर्थ यह है कि, तपमंत्र कर्म योगादिक अनेक साधनोंसे निश्चय करके ज्ञान साक्षात् मोक्षका एकही साधन है. यहां दृष्टांत है. जैसे पाकके अनेक साधन होनेसेभी एक अग्निही साधन है तिसकी नांई ज्ञानके विना मोक्ष नहीं सिद्ध होता है.

यह श्रवण द्वारा ज्ञान होनेकेनिर्णयकी सप्तविंशतितमी युक्ति संपूर्ण हुई ॥ २७ ॥

ॐ

सर्पकाटनेके दृष्टांतसे ज्ञान होनेकी युक्ति

अब सर्प काटनेके दृष्टांतसे ज्ञान होनेकी युक्ति कहताहूं—

दृष्टांत किसी पुरुषकों सर्पनें काटा सो पुरुष सर्पके विषकरके व्याकुल भया और गारडूके निकट गया. और गारडूतें प्रार्थना करी कि, मुझकों सर्पनें काटा है तिसके विषकरके अति व्याकुल हूं, मेरे विषकों निवारण करो. तब उस गारडूनें उस पुरुषको झाडा दिया. उसको झाडा देनेसे उस पुरुषकों कुछ क्षणमात्र सुख हुवा. फिर वैसाही दुःख होगया. तब दूसरे गारडूके निकट गया. और उसही प्रकार प्रार्थना करी, तब उस दूसरे गारडूने भी उसही प्रकार झाडा दिया. फिर उस पुरुषकों कुछ सुख हुवा. फिर वैसाही दुःख होगया. तब

वह पुरुष तीसरे गारडूके निकट गया और उसही प्रकार प्रार्थना करी. उसकेभी झाडा देनेसे कुछ सुख हुवा. फिर वैसाही दुःख होगया. तब चौथे गारडूके पास जाकरके इस पुरुषने प्रार्थना करी कि, महाराज! मुझकों सर्पनेंकाटा है, सो मेरेकूं विष चढा है, और मैं व्याकुल हूं, करुणा करके मेरे दुःखको निवारण करो. तब उस पुरुषनें इसकों पूछा कि, सर्प कहां है? तब इस पुरुषनें कहा कि, सर्प इस बांबीमें है. तब उस चौथे गारडूनें एक सरकणा लेकर चीरा और दो भाग करे; और एक मंत्र पठण करके उसकी बांबीमें डाल दिया. वह सरकणा उस सर्पकों पकड करके बाहर ले आया, तब उस गारडूनें उस सर्पकों कहा कि, तैनें इस पुरुषकों क्यों काटा? तब उस सर्पनें कहा कि, यह पुरुष मुझकों छेडताथा. फिर उस गारडूनें उस सर्पकों कहा कि, इसकों लगकरके इसका विष तूं खैंचले. इसही प्रकार सर्पने जहां काटा था वहीं लग करके विष खैंच लिया, और सर्प चला गया. उस पुरुषकों दुःखकी निवृत्ति और आनंदकी प्राप्ति हुई; सो वह पुरुष परमानंदी होरहा है.

अब **दार्ष्टांत** कहते हैं, जीवरूपी पुरुषकों मनरूपी सर्पनें काटा, तब वह देहादिकके अध्यासरूपी विष करके व्याप्त भया. और कर्मकांडके आचार्यरूपी गारडूके निकट गया. और प्रार्थना करी कि, महाराज! मेरा जन्ममरणरूपी दुःख निवारण करो. तब उस कर्मकांडके आचार्यरूपी गारडूने झाडारूपी उपदेश किया. तिसके कर्मरूपी झाडे करके थोडे सुखस्थानीं स्वर्गादिकके भोगकों भोगकरके फिर दुःखकों प्राप्त हुवा, अर्थात् फिरभी जन्ममरणकों प्राप्त हुवा. फिर उपासनाके आचार्यरूपी दूसरे गारडूके निकट गया, और प्रार्थना करी. उसनेभी उसही प्रकार झाडा रूपी उपदेश दिया. तिसके उपासनारूपी झाडे करके थोडे सुखस्थानी वैकुंठादिक सुखकों भोग करके फिर दुःखकों प्राप्त हुवा. फिर पतंजलके आचार्य स्थानीं तीसरे गारडूके निकट गया. और उसही प्रकार प्रार्थना करी. तिसके अष्टांग योगरूपी झाडे करके थोडे सुख स्थानीं ब्रह्मांडके स्थित रहनेपर्यंत सुख भोग करके फिर दुःखकों प्राप्त भया. तब चौथे गारडू-

स्थानी ज्ञानकांडके आचार्यके निकट गया, और प्रार्थना करी कि, महाराज! मुझकों मनरूपी सर्पने काटा है, और तिसके देहादिक अध्यासरूपी विषकरके अति व्याप्त हूं, मेरे दुःखकों निवारण करो. तब उस आचार्यरूपी चौथे गारडूनें पूछा कि मनरूपी सर्प कहां है? तब उस जीवरूपी पुरुषनें कहा कि विषयरूपी बांबीमें है. तब उस आचार्यरूपी गारडूनें सरकणा स्थानीं "तत्त्वमसि" श्रुतिकूं चीरनेरूपी तत्पद और त्वंपदको भिन्न किया. और मंत्र स्थानीं इस महावाक्यका अर्थ करके डाल देने स्थानीं उपदेश कियाकि, "तद्ब्रह्म त्वमसि" इसका अर्थ सो ब्रह्म तूं है. सो वह सरकणे स्थानीं श्रुति और तिसके अर्थ स्थानीं मंत्र करके उस मन रूपी सर्पकों विषयरूपी बांबीसे बाहर निकाला. तब उस ज्ञानकांडके आचार्यरूपी गारडूनें मनरूपी सर्पसें पूछने स्थानीं कहा कि, इसपुरुषकों काटनेस्थानी विषयोंविषे चंचलता करके क्यों दुःख दिया है? तब उस मनरूपी सर्पनें कहा कि, यह

जीवरूपी पुरुष मेरेकूं छेडने स्थानी प्रेरणा करे है. तब आचार्यनें कहा कि, इसकों लगने स्थानी अपने स्वरूप विषे एकताकी प्राप्ति हो जावे. और विष खेंचने स्थानी इस जीवरूपी पुरुषकों देहादिक अध्याससे निवारण कर. इसही प्रकार मनरूपी सर्पनें किया. और चले जाने स्थानीं लय होगया. तब वह पुरुष अच्छे होने स्थानीं परमानंदकों प्राप्त हुवा. अथवा परमानंदस्वरूपमें स्थित भया.

प्रश्नः—इसविषे प्रमाण क्या है ?

उत्तरः—इसविषे स्मृति प्रमाण है ॥ **अहंकर्तेत्यहंमानमहाकृष्णाहिदंशिनः ॥ नाहं कर्तेति विश्वासामृतं पीत्वा सुखी भव॥१॥**इसका अर्थ यह है कि, मैं कर्ताहूं ऐसा जो भया अभिमान, सोई महाकाला सर्प तिसने काटा जो तूं, सो तूं मैं कर्ता नहीं ऐसे विश्वासरूपी अमृतकों पीकरके सुखी हो.

यह सर्प काटनेके दृष्टांतसे ज्ञान होनेकी अष्टाविंशतितमी युक्ति संपूर्ण हुई ॥ २८ ॥

ॐ

श्रीसच्चिदात्मने नमः ।

सांडके दृष्टांतसे ज्ञान होनेकी युक्ति.

अब सांडके दृष्टांतसे ज्ञान होनेकी एकोणतीसवी युक्ति कहताहूं–**दृष्टांत** एकसांड था.सो गौंकेसंग चरता फिरता था.और संतान भी उत्पन्न करता था. और बहुत मग्न रहाकरे. एक दिन चरता चरता किसीके खेतमें जाबडा. उस पुरुषने लाठीसे पिटा. और दोनों सींग तोड गेरे और भारकसनेके रसीकरके वृक्षकों बांधदिया और खानेकेवास्ते थोडा तृण जल दिया. जब उस सांड-का सारा बल निकल गया, तब इस गामकी सीमाथी पांचकोशके बाहर उसको निकास आया.वह सांड अति प्रसन्न होके वहां विचरने लगा.

अब **दार्ष्टांत** कहते हैं. अहंकाररूपी सांड है, इंद्रि-यांरूपी गौंके संग शब्दादिक विषयोंकों भोगता

फिरता है, और राग द्वेषरूपी संतानभी उत्पन्न करता है. इन विषयों विषेही जानेरूपी सन्मुख होकरके ब्रह्म-विद्यारूपी चारेकों चरने लगा. उस ज्ञानी पुरुषनें विचाररूपी लाठीसे पीटा और पापपुण्यरूपी दोनों सींग तोडगेरे, और वैराग्यरूपी भारकसनेके रसीकरके वेदरूपी वृक्षकों बांध दिया.और श्रवण मनन निदिध्या-सनरूपी चारा और जल दिया, तब उसका अभिमा-नरूपी बल निवृत्त भया, तब पांच कोशरूपी अन्नमया-दिक पांच कोशोंसे बाहर निकाल दिया, तब सो वह सांडरूपी पुरुष परमानंदस्वरूप होकर विचरने लगा.

प्रश्नः—उस विवेकी पुरुषनें पंचकोशसे विलक्षण तो कर दिया. परंतु वैराग्यरूपी जेवडा उसके संगही छोडा अथवा खोल दिया? जो कहो कि वैराग्यरूप जेवडेसे बंध रहा है तो मुक्ति क्या हुई? कारण वैराग्यभी बंधन ही है कि नेम हो रहाहै? इससे और ज्ञानीकी दशा अनेमी कहीहै; और जो कहो कि, वैराग्यरूप बंधन तोड दिया तो स्वेच्छाचारी वर्तेगा और चाहेगा जैसा

अनर्थ करेगा. औरभी कहै है, व्यवहारमें तो सांडके छोडनेवालेने जेवडासे बैलकों खोला, सो तुमने कैसा वर्णन किया ?

उत्तरः—रे भाई! वैराग्यरूपी जेवडा खोल लिया है. और जो तूं कहता है कि, वैराग्य विना विपरीत वर्तेगा तो अभिमानरूपी बल उस्को है ही नहीं तो विपरीत कैसा वर्तेगा.जिन साधनोंसे ज्ञान भया है वह साधन स्वरूपभूतही रहते हैं. इसका विशेष निर्णय ज्ञानी और अज्ञानीके व्यवहारके निर्णयकी युक्तिमें कहा है, सो देख ले. और ऐसा होनेसे व्यवहार भी घट गया.

प्रश्नः—केवल पंचकोशोंके विचारसे ज्ञान होता है इसका प्रमाण कहो.

उत्तरः—इसका प्रमाण स्मृतिमें कहा है. असंग आत्मस्वरूपका जो ज्ञान तिसके विचारके प्रकारकों कहते हैं.

॥ वपुस्त्वन्नादिभिः कोशैर्युक्तं युक्त्याव-

घाततः ॥ आत्मानमंतरं शुद्धं विविच्या-त्तंडुलं यथा ॥ इसका अर्थ यह है कि, अन्नमया-दिक पंचकोशोंकरके संयुक्त, अंतर शुद्ध आत्माकूं युक्ति पूर्वक विचार करके जानना योग्य है. जैसे तुषा-दिक करके संयुक्त चांवलको युक्ति करके छडनेसे चांवल प्राप्त होते हैं, तैसे युक्ति करके विचार करनेसे पंचकोशोंसे आत्माका ज्ञान होता है.

यह सांडके दृष्टांतसे ज्ञान होनेकी एकोनत्रिंशत्तमी युक्ति संपूर्ण हुई ॥ २९ ॥

ॐ

तत्सद्ब्रह्मणे नमः

निषेध और विधिद्वारा ज्ञान होनेकी युक्ति।

अब निषेध और विधि द्वारा ज्ञान होनेकी तीसवी युक्ति कहताहूं—किसी राजाके चित्तमें वैराग्य उत्पन्न हुवा.तिस राजानें किसी महात्माके निकट जाके प्रार्थना करी कि, महाराज ! ऐसी कृपा करो जो मेरा संसाररूपी दुःख निवृत्त होवे. तब तिस महात्मानें कहा कि, तूंही अपनें ऊपर आप कृपा कर. तो तेरा दुःख निवृत्त होयगा. तब तिस राजानें कहा कि, महाराज ! 'आप' यह क्या कहो हो ! मैं अपनें उपर किसप्रकार कृपा करूं. तब उस महात्मानें कहा कि, ये संपूर्ण सामग्री जो तूनें संग्रह करी है, इसहीसे तेरेकों दुःख है. जो तूं इसकों त्याग देवे तो अबही सुखी हो जाय. यही आप अपने

उपर कृपा करनी है. पदार्थका त्याग मनकरके होता है, इससे ऐसा मन बनाव, जो पदार्थका त्याग करे और तुमकों दुःखसे छुडावे.

प्रश्न—इसका प्रमाण कहां है.

उत्तरः—श्रीभगवाननें गीतामें कहा है ॥ **उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ॥ आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ १ ॥** इसका अर्थ यह है कि, विचारयुक्त मनकरके आत्माका संसारसे उद्धार करे, फेर नीची गतिकों नहीं लेजाय. विषयोंसे मन उपराम होनेसे आत्माका उपकारक है. और जो मन विषयोंमें आसक्त है सो मन आत्माका शत्रु है ॥ १ ॥ इससे विषयोंकी आसक्तिके त्यागनेसे मोक्ष होता है और विषयासक्तिसे बंध होता है, ऐसा जानकर रागादिक स्वभावकों अवश्य त्याग दे. तब वह राजा यह वार्ता सुनकरके अपनें स्थानमें गया. उसनें खड्ग लेकर संपूर्ण हाथी, घोडे, ऊंट, बैल, जो सामग्री थी तिन्होंके जेवडे काट दिये. और द्रव्यके

भंडारकों आदि लेकरके संपूर्ण सामग्री लुटा दीनी, और सारी सेनाकों बिदा करदिया, और राजा अकेलाही रहा. राजानें आपका सर्व दुःख निवृत्त होनेके वास्ते सर्व अर्थका त्याग किया था, परंतु उस राजाका दुःख निवृत्त नहीं हुवा. तब फिर उस महात्माके निकट गया. और जाकर प्रार्थना करी कि, हे भगवन्! मेरा दुःख निवृत्त नहीं भया. मेरे तो और अधिक दुःख हो गया. मैंनें संपूर्ण सामग्रीका त्याग किया परंतु दुःख करके व्याकुल हूं. तब गुरुनें कहा कि, तैंने त्याग नहीं किया. जैसे कोई दुःखी पुरुष वैद्यके निकट गया उस वैद्यनें औषधी बताई और फिर वह गया कि, मेरा दुःख निवृत्त नहीं भया तब वैद्यनें जाना कि औषधी नहीं खाई और जो खाई तो विपरीत करके खाई. विपरीत करके खानेसे नहींखाई बराबर है; इसवास्ते ऐसी गती भई. हे राजा! तैनें सामग्रीका त्याग नहीं किया. करता तो निश्चय करके सुखकों प्राप्त होता.तब राजानें कहा कि, भगवन्! चलके देख लो. मैंनें संपूर्ण

सामग्रीका त्याग कर दिया है. तब गुरु शिष्यके स्थान पर गये और कहा कि, तूं सच्चा है. त्याग तो तैंने किया है, परंतु बाह्यत्याग किया है आंतरीय त्याग नही भया है. तेरे ये संपूर्ण सामग्री एकतिल बराबर स्थानमें बडगई. जिस सामग्रीके रहनेका कोशोंमें स्थान था सो संपूर्ण सामग्री अति सूक्ष्म देशमें प्रवेश करगई. तो तुमही कहो कि, जहां ऐसी भीड भई है तहां विशेष दुःख होवे कि नहीं होवे? तब राजानें फेर प्रार्थना करी कि, महाराज! मैं क्या करूं? तब गुरुनें कहा कि यह गंगा है, इसमें गोता मार जा; और उसके परले किनारे जाकरके जो वृक्ष दीखता है तिसके नीचे जाकर बैठो, तेरा संपूर्ण दुःख निवृत्त हो जायगा. वहां उस दुःखका बल नहीं चलता. फिर इधरको झांक करके परकों मुख्य फेर लीजो तब दुःखका अत्यंताभाव हो जायगा.

अब **दार्ष्टांत** कहते हैं कि, जीवरूपी राजाने वैराग्यके उत्पन्न होनेसे दुःखकी निवृत्तिके लिये गुरुकी आज्ञा

लेकरके पदार्थोंके त्यागनेके अर्थ वर्णाश्रमके धर्मरूपी जो जेवडे थे सो काट दिये;और जीवरूपी राजानें सेनाके त्यागनेस्थानीं संपूर्ण जाग्रत्की सामग्रीका त्यागकर दिया. जब जीवरूपी राजाकों पदार्थोंका स्मरण हुवा तब दुःख हुवा. इसमें गुरुनें तो जाग्रद्विषे उपदेश किया था, परंतु शिष्यको ज्ञान नहीं भया.फिर गुरुकों प्रश्न किया कि, हे भगवन्! मेरा संसाररूपी दुःख निवृत्त नहीं भया. तब गुरुने कहा कि, तैनें त्यागही नहीं किया. जो तूं त्याग करता तो शेष तूंही परमानंदरूप रहता. इसीपर गुरुनें वैद्यका दृष्टांतभी कहा. सो दार्ष्टांतिक राजानें वर्ता. जब जीवरूपी राजानें कहा कि महाराज! मेरा दुःख क्यों नहीं निवृत्त भया? तुम चलकर देखलो, मैंने सर्व त्याग किया है. तब गुरुने आकरके क्या देखा कि, तिसके विचारकी परिक्षा लीनी. तो अधिष्ठानका ज्ञान शिष्यकों नहीं भया. तब गुरुनें कहा कि यह संपूर्ण सामग्री तेरे सूक्ष्मस्थानरूपी चित्तमें बड गई है. जिसकों तिल प्रमाण कहाथा सो सामग्री अब सूक्ष्मस्थानमें प्रवेश

प्रवेश कर गई है. फिर दुःख किस प्रकार होवे? जब जीवरूपी राजानें प्रार्थना करी कि, भगवन्! मेरा दुःख निवारण करो. इसकरके क्या निश्चय भया कि, गुरुने स्वप्नमें उपदेश किया. फिरभी शिष्यको ज्ञान नहीं भया.

प्रश्नः—अच्छा. स्वप्नमें कैसा उपदेश किया?

उत्तरः—रे भाई! सुन. स्वप्नमें ऐसा उपदेश किया कि, जीवरूपी राजानें जाग्रतकी संपूर्ण सामग्री त्याग दीनी, तब सामग्री बाहरसे निकसकर चित्तमें जा बडी. सोई स्वप्न भया. और सूक्ष्म स्थान जो कहाथा सो कंठकी पुरीतती नाडी कहीथी. उसमें वह तिलबराबर चित्त प्रवेश कर गया. वहां जो सामग्री देखी सो स्वप्नका स्थान था, तो स्वप्नमेंभी शिष्यको स्वयंज्योतिका उपदेश किया कि,तेरे भीतर जो सामग्री प्रवेश कर गई है तिसका दृष्टांत तूंही है, यही स्वयंज्योतिका उपदेश किया. जो शिष्यका दुःख निवृत्त नहीं भया, इसमें यह प्रतीति भई कि ज्ञान नहीं भया. तब गुरुनें सुषुप्तिरूपी गंगाजीमें गोता लगानेका उपदेश किया

सो यह कहाथा कि, सुषुप्तिहीके सुखकों तूं अपना स्वरूप नहीं मानना, कि यही स्वरूपानंद है. और गंगापार जो वृक्ष कहाथा सो तुरीयावस्थाका उपदेश किया है. और इधरकों झांकने स्थानी यह कहाकि, तीनों अवस्थाका तूं साक्षी है. तुरीया और मुख फेरने स्थानी यह कहा कि तूंही तुरीयातीत है. निर्विकल्प समाधिस्थित तुरीयातक तो सविकल्प समाधि कही और तुरीयातीतकरके निर्विकल्प समाधिका उपदेश किया.

प्रश्नः—इसपर प्रमाण कहो.

उत्तरः—इसपर श्रुति प्रमाण है ॥ **जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिप्रपंचं यत्प्रकाशते॥ तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबंधैः प्रमुच्यते** ॥ १ ॥ इसका अर्थ यह है कि, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्त्यादिक प्रपंचकों जो प्रकाशै सोई ब्रह्म मैं हूं. ऐसा जान करके सर्वबंधोंसे मुक्त होता है.

प्रश्नः--हे प्रभो ! सविकल्पसमाधि और निर्विकल्प समाधि किस प्रकार सिद्ध होता है सो प्रमाणपूर्वक कहो.

उत्तरः--स्मृतिमें कहा है कि ॥ सत्व रजस्तमोगुणात्मिकाः शांतिघोरमूढवृत्तयः । तत्र शांतिः सुखमौदार्यं वैराग्यं च । घोरस्तु कामोलोभः क्रोधस्तृष्णा॥मूढो मोहो भ्रांतिः। एतासां वृत्तीनां हृदये यत्स्फुरणं तदृश्यं । तस्य द्रष्टा साक्षी अनुस्यूतोहमिति दृश्यानुविद्ध आंतरीयसविकल्पकसमाधिः १॥वृत्तीनां त्रिगुणात्मकत्वादसंगोहमिति शब्दानुविद्धआंतरीयसविकल्पकसमाधिः ॥ २ ॥ हृदये एतयोर्विकल्पयोरस्फुरणमसंप्रज्ञातसमाधिः । सएव निर्विकल्प इति चोच्यते॥३॥ अथवा हि सूर्यादिकस्य द्रष्टा साक्षी अनुस्यूतोऽहमिति दृश्यानुविद्ध सविकल्पसमाधिः४

**सूर्यादिकादसंगोहमिति शब्दानुविद्धः५एतदु-
भयविकल्पास्फुरणान्निर्विकल्पकसमाधिः ६**

इसका अर्थ यह है कि, सत्व, रज और तम यह तीन गुणोंकी शांति, घोर और मूढ ऐसी वृत्तियां हैं. तहां शांति वृत्तिमें सुख, उदारता और वैराग्य हैं; घोर वृत्तिमें काम, लोभ, क्रोध और तृष्णा है; मूढ वृत्तिमें मोह और भ्रांति है. इन वृत्तियोंका हृदयमें जो स्फुरण होना सो दृश्य है तिसका दृष्टा साक्षी अनुस्यूत[1] मैं हूं, इसप्रकार दृश्यानुविद्ध अंतरकी सविकल्पक समाधि है ॥ १ ॥ वृत्तियोंके त्रिगुणात्मकत्वसे मैं असंग हूं इसीप्रकार शब्दानुविद्ध भीतरकी सविकल्पक समाधि है ॥२॥ हृदयमें इन दोनों विकल्पोंका जो नहीं स्फुरना सो असंप्रज्ञात समाधि है. तिसको निर्विकल्पसमाधि भी कहते हैं ॥ ३ ॥

---

१ अविछिन्न अंदर प्रवेशित. जैसा मालाके प्रत्येक पुष्पमें सूत अविछिन्न प्रवेशित रहता है तैसा सर्व वृत्तिमें प्रवेशाति.

अब बाहरकी समाधियां कहते हैं. सूर्यादिकका द्रष्टा साक्षी अनुस्यूत मैं हूं इसीप्रकार दृश्यानुविद्ध सविकल्पक समाधि है ॥ ४ ॥ सूर्यादिकसें असंग मैं हूं इसप्रकार शब्दानुविद्ध समाधि है. ॥ ५ ॥ इन दोनों विकल्पोंके नहीं स्फुरनेसे निर्विकल्प समाधी कही जाती है. ॥ ६ ॥

यह निषेध और विधिद्वारा ज्ञान होनेकी
त्रिंशत्तमी युक्ति संपूर्ण हुई ॥ ३० ॥

ॐ

नमः सच्चिदानंदाय।

ज्ञानी और अज्ञानीके निर्णयकी युक्ति.

अब मुदादाशिल और दर्पणस्थानीं ज्ञानी और अज्ञानीके निर्णयकी एकतीसवी युक्ति कहताहूं—

वादीने प्रश्न किया कि, जैसी बालककी अवस्था है तैसी ज्ञानीकी अवस्था है. कारण तिन दोनोंको शुभ और अशुभका अनुसंधान नही है. जैसे एक राजाका बालक था, उसनें राजाके गोदमें बैठकर राजाकी मूछ पकड लीनी. तब राजाने क्रोध करके कहा कि, इस बालककों मार डालो. तब मंत्रीने कहा और पंडितोंनेभी कहा कि, महाराज! यह बात अयुक्त है. कारण यह बालक है, इसकों आपके महत्वका अनुसंधान नहीं है. और शुभ अशुभकों नहीं जानता. राजानें कहा कि, हम कैसें जानें. तब मंत्रीनें सर्पकों मंगवाय

करके सर्पवालेको कहा कि इस सर्पका मुख बांधकर इसबालकके आगे छोड दे, उसनें सर्पकों मुख बांधकर छोड दिया, तब बालकनें उस सर्पकों पकड लिया. तब राजाकों निश्चय हुआ कि बालककों शुभअशुभका अनुसंधान नहीं है. ऐसी ज्ञानीकी स्थिति है.

उत्तरः—सिद्धांती कहता है कि, ऐसी अवस्था ज्ञानीकी नही है, यह तो अवस्था मूढकी है. और ज्ञानीका अंतःकरण कैसा है कि मुदादाशिलके नांई है और अज्ञानीका अंतःकरण दर्पणकी नांई है. दरपणके सन्मुख जो पदार्थ करिये तिस विषे सोई भान होता है, और मुदादाशिलके सन्मुख जो पदार्थ करिये तिस मुदादाशिलमें केवल एकमोरही भान होता है. इसही प्रकार ज्ञानीके सन्मुख जितना कुछ पदार्थ है सो संपूर्ण एक चैतन्य मात्रही भान होय है.और दूसरा विकलपही नहीं उठता और अज्ञानी जो है, तिसके सन्मुख जो पदार्थ आता है तिसपदार्थकेही आकार उसकी वृत्ति होती है. अर्थात् नानात्व जगत् ही उसकों भान होय है. चैतन्यमें दृष्टि नहीं है.

प्रश्नः– जो तुम कहते हो कि, ज्ञानीकों एक चैतन्यमात्रही भान होताहै, दूसरा विकल्प नहीं होता तो कहो कि, शिष्यको अध्यारोप और अपवाद लेकरके उपदेश किस प्रकार करे है ?

उत्तरः–रे भाई! सुन. ज्ञानीको दूसरा विकल्प नहीं होता. केवल शिष्यके विकल्पकों ले करके उपदेश करता है.किसप्रकार कि, जैसे बालक जोवकु उत्पात करता है, तब उसकी माता उसकों हाऊ बतावे है परंतु माताकी दृष्टिमें हाउ तीन काल (भूत, वर्तमान भविष्यत्) में नहीं है. केवल कथन मात्रही हैं. इसही प्रकार दार्ष्टांत समझ लेना.

प्रश्नः–अज्ञानीका शरीर जो पंचभूतोंका है सोई ज्ञानीका है. तो ज्ञानीकों अधिक मानते हो इसमें क्या विशेषता है?

उत्तरः–रे भाई! सुन. जैसे कोई मृतक शरीर चेष्टा करनेको लगे तो तिसका बडा आश्चर्य होता है, इसही प्रकार ज्ञानीका जो शरीर सो मृतक शरीरकी नांई चमदेह है, परंतु कैसा है कि, मृतक शरीर मरे हुयोंको

जीवावै है. सो मरे हुए कौन है कि, जे अपने स्वरूपसे विमुख हैं. उनको जीवना क्याहै कि, सन्मुख करके स्वरूपकी प्राप्ति करवावै है. इससे मृतक शरीरमें यह अधिकता रही है और जो जीवता होता तो क्या करता?

प्रश्नः—तुम कहते हो कि,अपने स्वरूपसे जे विमुख हैं सो मरे हुए हैं. इसविषे प्रमाण क्या है?

उत्तरः--इसविषे श्रुति प्रमाण है ॥**मृत्योः स पुमा-नाप्नोति य इह नानेव पश्यति** ॥इसका अर्थ यह है कि, जो पुरुष आत्माविषे नानात्व देखता है सो पुरुष मरणसे मरणहीकों प्राप्त होता है. सो ज्ञानीका मृतक शरीर कैसाहै कि मृदंगकी नाई मृतकभी है और निर्विकल्पभी है. और लोकोंके प्रश्नरूपी बजावनेसे तिन्होंको अपने शब्दरूपी उत्तर करके विशेष आनंद देता है.

यह मुदादाशिल और दर्पण स्थानी ज्ञानी और
अज्ञानीके निर्णयकी एकत्रिंशत्तमी युक्ति
संपूर्ण हुई ॥ ३१ ॥

ॐ

नमः शिवाय।

सत्रह घोडोंके दृष्टांतसे तत्वज्ञानके निर्णयकी युक्ति।

अब सत्रहघोडोंके दृष्टांतसे तत्वज्ञानके निर्णयकी बत्तीसवी युक्ति कहताहूं-तीन सौदागर सत्रह घोडे लेकरके सौदागरीकों गयेथे. एक तिहाईका सांझी था, और एक आधोंका सांझी था, और एक नववे भागका सांझी था. सो आपसमें कुछ बिगाड होनेसे वनमें अपने विभाग वांटने लगे. सो विभाग वांटसके नहीं. कारण सत्रहके आधेभी नहीं हो सकते, और तिहाईभी नहीं होसकती और नववा विभागभी घोडेके छेदकियेविना नहीं हो सकता; इससें सोचमें थे, सो इतनेमें एक चतुर पुरुष घोडेपर सवार होकर आया. और उन्होंको पूछा कि, तुम क्या सोच रहे हो? उन्होंनें सब वार्ता कही

तब उस पुरुषने कहा कि, तुम्हारा विभाग भिन्न भिन्न कर देवेंगे;तब उस पुरुषनें अठारहवा अपना घोडा मिलाय दिया. और तिहाईवालेकों छह घोडे दिये वह बहुत प्रसन्न होकर लेगया. और आधे वालेकों आधेके नव घोडे दिये,वह बहुत प्रसन्न होकर ले गया. और फेर नवें विभागवालेको दो घोडे दिये, वहभी प्रसन्न होकरके ले गया. सो उस पुरुषनें सर्व सत्रह घोडे उन तीनोंको वांटकरके और झगडा निवृत्त करके और तीनोंको प्रसन्न करके अपनां अठारवां घोडा ले गया.

अब **दार्ष्टांत** कहते हैं. विश्व तैजस प्राज्ञ नामक तीन सौदागर हैं. तीनोंके सत्रह घोडे स्थानीं स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर तीनोंका संघात हुवा. यही झगडा भया. और विभाग नहीं होसकनेरूपी बल तीनोंकों नहीं था. इतनेमें चतुर पुरुष स्थानी विवेकी पुरुष आया; तिस पुरुषने पूछा कि, तुम्हारे उपद्रवरूपी झगडा क्या है? तब उन तीनोंने कहा कि, हमारे संघातरूपी घोडे इकट्ठे हो रहे हैं, हमकों ऐसी बुद्धि विचारात्मक नहीं

कि, जो इनका विभाग करें. और विभाग किये विना हमारा दुःख नहीं जाता है. तब उस पुरुषने कहा कि, तुम्हारे झगडेरूपी दुःखकी हम निवृत्ति कर देवेंगे. फेर उस ज्ञानी पुरुषनें उन्होंके संघातरूपी सत्रह घोडोंमें अपने अढारहवे घोडे स्थानीं चिदानंदको मिलायकरके उन्होंके विभाग इसप्रकार करदिये.

प्रश्नः—विभाग किसप्रकार किये वह मेरे समझमें नहीं आया. ये तो स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर हैं. घोडोंका तो विभाग बन गया. हम कैसे जानें कि, इन्होंमें स्थूल शरीर कौनसा है और सूक्ष्म शरीर कौनसा, और कारण शरीर कौनसा. इसकों भिन्न भिन्न कहो.

उत्तरः—इस संघातमें यह स्थूल शरीर षड् विकारवान् प्रसिद्ध है, सो तिहाई भागवाले विश्वनामा जीवकों भिन्न कर दिया. और नव अवयवका सूक्ष्म शरीर पुराणमें प्रसिद्ध है, सो तैजस नामा जीवकों भिन्न कर दिया. और कारण शरीरमें एक अज्ञानाकार वृत्ति और सुखाकार वृत्ति ये दो हैं, सो प्राज्ञ नामा जीवकों भिन्न कर दिया,इस प्रकार संघातका विभाग कर दिया;

और अढारहवे घोडे स्थानी अपना जो चिदानंदरूपी घोडा था सो ले गया.

प्रश्नः—शून्यवादी पूछता है, यह तो भला सिद्धांत किया. इस तुम्हारे सिद्धांतसे अभावही सिद्ध भया.

उत्तरः—अभाव सिद्ध नहीं भया. चैतन्यही सिद्ध भया है. कारण हमारे एक जीववाद है, एकही चैतन्य मानें हैं, शिष्यके संघातका अभावकरके आपही चैतन्य शेष रहा और गुरूके संघातकों बाध करके जो शेष रहा सोई चैतन्य शेष रहा.कारण वाच्यार्थोंका साक्षी एकही चैतन्य है.

प्रश्नः—इस विषे प्रमाण क्या?

उत्तरः--इसविषे॥ **तत्त्वमसि** ॥ महावाक्य प्रमाण है. इसका अर्थ यह है. सो ब्रह्म तूं है.

प्रश्नः- द्वैतवादी पूछता है इस श्रुतिका अर्थ जिस प्रकार तुमने कहा इस प्रकार नहीं है.

सिद्धांती कहता है इस श्रुतिका अर्थ किस प्रकार होता है सो तुम कहो.

द्वैतवादी–इसका अर्थ यह है कि तत्त्वमसि नाम तिसका तूं है.

सिद्धांती--तिसका तूं कौन है?

द्वैतवादी--तिसका मैं दास हूं.

सिद्धांती--तूं उसका अंश है अथवा उससे भिन्न है? जो तूं कहै कि मैं अंश हूं, तो तुम्हारा परमेश्वर अखंड नहीं हुवा. और अंशांशी भाव हुवा. इसकों आदिले करके अनेक दोष आवे हैं. और जोतूं कहे कि, मैं भिन्न हूं, तो चैतन्यसे भिन्न जड हैं. और तुम्हारा चैतन्य सर्वव्यापी नहीं भया. और जडका और चैतन्यका संबंध क्या? तुम मिथ्याही व्यवहार सिद्ध करोहो कि, तिसका तूं है. तिसका और तीसरा तो संबंध कुछभी नहीं संभव होता. इसकों आदिलेकर अनेक दोष हैं.

प्रश्नः–तुम्हारे विचार करके क्या प्रयोजन है? ब्रह्मका उपासिक ब्रह्मसें अत्यंत भिन्न होनेसेभी ब्रह्मके साथ एकताकों प्राप्त होगाही.

उत्तरः—मनुष्यधर्मकरके युक्त पुरुषकों उपासना करके सद्रूप ब्रह्मकी प्राप्ति नहीं होय है. इस विचारमें कोईभी अपने स्वप्रभावको अग्निउष्णकी नांई नहीं त्यागता है, इस कारणसे और जो अभिनिवेशमात्रकरके ब्रह्मकी प्राप्तिही कल्पना करो हो तो अत्यंत विरुद्धस्वभाववाले दोनोंकी एकताके संभवसे जीवके स्वरूपकी हानी होतीहै.

प्रश्नः—तो स्वरूपहानिविषे प्रमाण कहो.

उत्तरः—श्रुतिसारसमुद्धारमें कहा है कि॥यदि देहभृदेष सदात्मकतां प्रगमिष्यति वै सदुपासनया॥ न जहास्यति रूपमसौ हि निजं यतऐक्यमतिर्न भवत्युभयोः ॥ १ ॥ इसका अर्थ यह है कि, जो यह देहधारी जीव ब्रह्मकी उपासना करके ब्रह्मताकों प्राप्त होयगा तो यह जीव अपने मनुष्यस्वभावकों क्या नही त्यागेगा? अर्थात् त्यागेगाही. इससे दोनोंके विलक्षण विरुद्ध स्वभावसे ऐक्यमति नहीं होय है. इससे जीवकों ब्रह्मकी प्राप्ति उपासनाका

फल कहनेकों योग्य नहीं है. सोई आचार्योंने कहा है. ॥ नान्यदन्यद्भवेत्तस्मान्नान्यदन्यद्धि चिंतयेत् ॥ अन्यस्यान्यात्मभावे हि नाशस्तस्य ध्रुवो भवेदिति ॥ १ ॥ इसका अर्थ यह है कि, अन्यवस्तु अन्य नहीं होय, इसी कारणसे अन्यवस्तु करके अन्यका चिंतवन न करे; यह प्रसिद्ध है. अन्य वस्तुकों अन्यरूप होनेसे तिसका नाश निश्चय होताहै.

यहां पूर्वपक्षी दृष्टांत रहित कहता है. मनुष्यस्वभावके नाश होनेसे और स्वरूपके नाश विनाभी ब्रह्मकी प्राप्ति फल होयगा. सोई शास्त्र प्रमाण कहते हैं. ॥ रसविद्धमयः प्रकृतिं सहजां प्रविहाय यथा कनकत्वमियात् ॥ पुरुषोपि तथा सदुपासनया प्रतिपत्स्यत एव सदात्मकताम् ॥ १ ॥ इसका अर्थ यह है कि, रसविद्ध लोह अपनें नाशके अनंतर अपनी प्रकृति लोहताको त्यागकरके सुवर्णताकों जैसे प्राप्त होता है, तैसेही पुरुषभी ब्रह्मकी उपासना

करके अपने नाशके विना मनुष्य स्वभावकों त्यागकरके ब्रह्मात्मकताकों प्राप्त होयही है.

सिद्धांती कहता है. ऐसा दृष्टांत विद्वानोंकों कहना योग्य नहीं है. लोहकों कांचनता भ्रांति मात्र है, सोई प्रमाणसहित कहते हैं ॥ **अयसोऽवयवानभिभूय रसः स्थितवाननलानुगृहीतिमनु॥कनकत्वमतिं जनयत्ययसि प्रतिपन्नमयो नतु कांचनताम्॥ १ ॥** ॥ इसका अर्थ यह है कि, लोहके अवयवोंको आच्छादन करके रस अग्निमें तपावनेके पश्चात् अपनें अनुग्रहके बलसे लोहविषे केवल कनकबुद्धि उत्पन्न करता है. लोह कांचनताकों प्राप्त नही हुवा. इसी अर्थकों दृष्टांत करके प्रमाणसहित वर्णन करते हैं. ॥ **उदकावयवानभिभूय पयो रजताऽवयवांश्च यथा कनकम् ॥ विपरीतमतिं जनयत्युदके रजते च तथाऽयसि हेममतिम्॥ १ ॥** ॥ जैसे दूध और कनक जलके

और रजतके अवयवोंको आच्छादन करके जल और रजत विषे दूध और कनक बुद्धि उत्पन्न करता है, तैसें ही रसभी लोहेके अवयवोंकों आच्छादन करके लोह विषे कनक बुद्धि उत्पन्न करता है. परंतु कनक नहीं करता है. कारण रसका बल जब निवृत्त होयगा तब लोह हो जायगा. यह जगतमें प्रसिद्ध है. तैसेही दार्ष्टांत जान लेना.

प्रश्नः--जीवकोटीका तो निर्धार भया, परंतु ईश्वर कोटीका तो निर्धार नहीं भया.

उत्तरः--तूंही अति प्रियवादी है, श्रवण कर. स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरके निषेधमें समष्टिके अभिमानी विराट हिरण्यगर्भ और ईश्वर लय होगये. और जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति; सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण; ब्रह्मा, विष्णु और शिव; ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद; दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय ये तीनों अग्नि; अकार, उकार और मकार यह तीनों मात्रा;और पृथ्वी, अंतरिक्ष और स्वर्ग यह संपूर्ण आत्मज्ञान होतेही यथाक्रम लय हो गये.

प्रश्नः--युक्तिका पूर्वापर विचार करके प्रमाण सहित कहो तब मानूंगा.

उत्तरः--इस विषे श्रुति प्रमाण है ॥ ऋग्वेदो गार्हपत्यश्च पृथिवी ब्रह्म एवच ॥ अकारस्य शरीरं तु व्याख्यातं ब्रह्मवादिभिः ॥ १ ॥ यजुर्वेदोंतरिक्षं च दक्षिणाग्निस्तथैव च ॥ विष्णुश्च भगवान् देव उकारः परिकीर्तितः २॥ सामवेदस्तथा द्यौर्वाहवनीयस्तथैव च ॥ ईश्वरः परमो देवो मकारः परिकीर्तितः॥३॥ इसका अर्थ यह है कि, ऋग्वेद, गार्हपत्य अग्नि, पृथिवी और ब्रह्मा वे ज्ञानियोंनें अकारका शरीर कहा है॥ १॥ यजुर्वेद, अंतरिक्ष, दक्षिणाग्नि और विष्णु भगवान् देव उकारका शरीर कहा है ॥ २ ॥ सामवेद, स्वर्गादिक, आहवनीयाग्नि और परम देव ईश्वर मकारका शरीर कहा है ॥ ३ ॥

यह सत्रह घोडोंके दृष्टांतसे तत्त्व ज्ञानके निर्णयकी द्वात्रिंशत्तमी युक्ति संपूर्ण हुई ॥ ३२ ॥

ॐ

नमो भगवते।

ईश्वरके निर्णयकी युक्ति.

अब ईश्वरकेनिर्णयकी तेतीसवी युक्ति कहताहूं-सिद्धांती कहता है कि,तुम जो ईश्वरके अवतार मानो हो,सो अवतार ईश्वरके अंश करके होते हैं अथवा ईश्वर सर्वकालही अवतार लेता है? जो कहोगे कि, ईश्वरके अंशकरके अवतार होते हैं तो ईश्वर अखंड होनेसे खंडायमान दोष आवता है;और जो कहोगे कि,समग्रही ईश्वर संपूर्ण कलाओंकरके अवतार लेता है, तो एकदेशावछिन्न हुवा कि, यहां अवतार लिया. और सो स्थान शून्य रहा.

मुमुक्षु कहता है इसका निर्णय तुमही करो.

सिद्धांती कहता है, रे भाई!सुन.जिस शरीरमें षड् भग होते हैं, तिस शरीरकी अवतार संज्ञा है. षड्भगोंका

लक्षण कहते हैं ॥ **ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ॥ ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥ १ ॥** संपूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य इन छहोंको भग संज्ञा है. भगकरके जो युक्त है सो भगवान् ईश्वर है. और तिस ईश्वरकोही कोई ब्रह्मा कहते हैं, कोई विष्णु कहते हैं, कोई शिव कहते हैं. और वैकुंठ, कैलास और सत्यलोकादिक स्थान बतावते हैं. सो ईश्वर किसीनें देखा है? और जो कोई कहे ईश्वरका मरेपीछे दर्शन होगा, अथवा कहेकि, इस देहसे पूर्व देखा था. तो कहो कि, ईश्वरके दर्शनका यहि फल हुवा कि वारंवार जन्ममृत्युकों प्राप्त भया ! इससे परोक्षका नाम ईश्वर है–कि परदेही मात्र है. इसविषे प्रमाण गीतामें कहा है सोई कहता हूं. **।दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्।** इसका अर्थ कहते हैं, हे अर्जुन! इन नेत्रोंसे तुझकों मेरा स्वरूप नहीं दीखनेका;इससे मैं दिव्य चक्षु देता हूं.

तिन नेत्रोंसे मेरा स्वरूप देखो. यह केवल परदेहीकी वार्ता कही है. कारण विश्वरूप प्रकट करके अर्जुनकों बताया है. सो यह विश्वरूपका विस्तार गीतामें ऐसा लिखा है कि ॥ **सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ॥ सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति** ॥ १ ॥ इसका अर्थ यह है कि, जिसके सर्व ओर हाथ और पैर हैं,जिसके सर्वओर नेत्र, शिर और मुख हैं, जो सर्वओर श्रवण इंद्रियोंकरके युक्त और जगतमें संपूर्णकों व्यापकरके जो स्थित है सो जाननेकों योग्य है ॥ १ ॥ इससे जो ऐसा महान्‌रूप यातें अर्जुननें किसप्रकार देखा? जो कोई ऐसा कहे कि, मुख देखकरके वर्णन किया; सो तिसकालविषे अर्जुनकाभी शरीर विराटके तुल्य बढ गया था?अथवा चारों ओर फिरके विश्वरूपकी प्रदक्षिणा करीथी?सो तो कहीं प्रमाण नहीं लिखा. और जो तुम कहते हो कि देखाहै ऐसा लिखा है तो कहो

इसमें द्रष्टा कौंन हुवा दृश्य कौंन हुवा? दृश्य तो विराट है, और द्रष्टा अर्जुन है. सो दृश्य बडा कि द्रष्टा बडा? यह तो प्रसिद्ध है कि दृश्यसे द्रष्टा बडा है.

प्रश्न–तुमही कहो कि अर्जुनने विश्वरूपकों किस प्रकार देखा है ?

उत्तरः–रेभाई! सुन. अर्जुननें अपनी बुद्धिके अवांतर देखा है. देखो अर्जुनके एक देशमें बुद्धि है. तिस बुद्धिके अवांतर ऐसा विराटरूप देखा इसमें विराटरूप कौन हुवा ? इसमें विराट अर्जुनही भया. यातें ऐसा महान् पूर्णरूप होकरके, तुच्छ और सावयव पाषाणादिककी मूर्ति है, तिनके आगे नाक रगडे है कि, मैं पतित हूं, मेरा कल्याण करो, यही मूढता है. ऐसे करनेसे ईश्वर जो है सो पर देहीका नाम कैसें है. यवनादिक मृतक शरीरकों मृत्तिकामें दाब करके बडा स्थान बनाते हैं, और अनेक प्रकारकी प्रार्थना करते हैं. जो पडदा उघाड करके देखे तो गले हुए अस्थिमात्र है.

प्रश्नः–तुम कहते हो कि ईश्वर परदेहीमात्र है, तो शास्त्रमें ईश्वर कहा है?

उत्तरः–रे भाई!सुन. जो ईश्वर कहा है सो केवल मूढ-पुरुषोंको भय देनेके निमित्त कहा है;कारण,तिसके भय करके मूढपुरुष शास्त्रसे विपरीत व्यवहार नहीं वर्तेगा. कारण जो विपरीत व्यवहार वर्तेगा तो ईश्वर दंड देवेगा. और उपासनादिक जो कही हैं सो स्त्रीपुत्रादिक जो पदार्थ हैं,तिन्होंकी उपासनां छुडावनेके अर्थ कहीहै.

यह ईश्वरके निर्णयकी त्रयस्त्रिंशत्तमी
युक्ति संपूर्ण हुई ॥ ३३ ॥

ॐ

नमः सच्चिदानंदाय ।

धर्मार्थकामके निर्णयकी युक्ति ।

अब धर्मार्थकामके निर्णयकी चौतीसवी युक्ति कहताहूं--एक नगरीमें एक राजा रहता था, सो राजा एक दिन शिकारको गया. उस राजाकी राणी रथमें बैठके नगरमें जातीथी. एक दुकानपर जौंहरीका लडका बैठा था. जिस लडकेकों राणीनें परदा उठाके देखा और लडकेनेंभी राणीकूं देखा. फेर वह रानी महलमें आई. और दासीकों भेजकर उस जौंहरीके लडकेकों बुलाया और कुछ रत्न लानेकेवास्ते कहा और कहा कि रानी मोल देकर लेवेंगी. जब लडका महलमें गया इतनेमें राजा आया. और राजाके आवनेकी वार्ता सुनकरके, राणीनें जौंहरीके लडकेकों दिशा फिरनके स्थानमें पटकदिया, तिसपीछेराजा आया. फेर राजा और

रानी तिसके उपर विष्ठामूत्र करते रहे. जब प्रातःकाल हुआ तब चूहडेने पट खोलकरके देखा तो एक पुरुष है ऐसा माल्लूम हुआ. तब जौंहरीके बेटेने अपना पदार्थ (रत्न) उस चूहडेकों देदिया. और कहा मुझे कहीं जलके निकट ले चल. तब सो चूहडा उस छोकरेकों टोकरेमें धरकरके नदीके निकट लेगया. वहां जाकर उस लडकेनें स्नान किया. और रात्रिकों अपने घरमें गया. और फिर वह लडका व्यवहार करनें लगा तहां पूछते हैं जो उस लडकेकों रानी फेर बुलावे तो वह जाय कि नहिं जाय? और जो जाय तो उस लडकेकों क्या कहिये?

अब **दार्ष्टांतिक** कहते हैं. अज्ञानरूपी नगरीमें कामरूपी राजा रहता था. सो राजा मनोरथरूपी शिकार खेलने गया, तिसकी रानी कामनारूपी इंद्रियोंके विषयरूपी रथमें बैठकर अज्ञानरूपी नगरीमें गई. तहां धर्मरूपी जौंहरीका कर्मेष्टिरूपी पुत्र बैठा था. तिसकों कामनारूपी राणीनें लज्जारूपी पर्दा उठाके देखा, तब उस कर्मेष्टिरूपी लडकेनेंभी देखनेंरूपी चित्त चलाया; फेर वह कामनारूपी राणी संसाररूपी महलमें आयकरके

वासनारूपी दासीकूं भेजा. और कर्मेष्टिरूपी लडकेकूं लाओ और आनेके बखत अर्थरूपी पदार्थ लेता आवो ऐसा कहा. फेर वह लडका अर्थरूपी पदार्थ लेकरके संसाररूपी महलमें गया. तिससमय कामरूप राजा आया. तब कामनारूपी राणीनें माताके गर्भरूपी दिशा-फेरनेके नरककुंडमें पटक दिया. तिसके उपर भोगरूपी विष्ठामूत्र पडता रहा. जब जन्मसमयरूपी प्रातःकाल हुआ तब कर्मरूपी चूहडेनें देखा कि, यह कर्मेष्टिरूपी पुरुष है. तब कर्मेष्टिरूपी पुरुषनें सुधरूपी पदार्थ दिया. और कहा कि, मुझे श्रद्धारूपी नदीपर लेचल. तब कर्मरूपी चूहडेनें प्रारब्धरूपी टोकरेमें डाल कर श्रद्धारूपी नदीपर आन उतारा. सो पुरुष श्रद्धारूपी नदीमें स्नान करके बेसुधरूपी रात्रीमें कर्मशालारूपी घरमें आया. और आकर व्यवहाररूपी कर्म करने लगा. अब जो कामनारूपी राणी उस कर्मेष्टिरूपी लडकेकों फेर बुलावे तो वह जाय कि नहीं जाय? ऐसा पूछनेसे कहते हैं कि, नहीं जाय. और जो जाय तो उसकों महापशु कहना.

प्रश्नः—कर्मेष्टी तो स्वर्गका जानेवाला है तो नरककों

किसप्रकार प्राप्त हुवा? इसका उत्तर प्रमाण सहित कहो.

उत्तरः—श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणकों रामगीतामें कहा है॥ **सौमित्रिणा पृष्ट उदारबुद्धिना रामः कथाः प्राह पुरातनीः शुभाः॥ राज्ञः प्रमत्तस्य नृगस्य शापतो द्विजस्य तिर्यत्वमथाह राघवः॥** इसका अर्थ यह है कि, उदारबुद्धि लक्ष्मणने पूछे हुए रामचंद्रजी शुभ और अशुभके निर्णय करनेवाली प्राचीन राजावोंकी कथा कहते भये. फेर रामचंद्रजी राजा नृगकों भ्रांतिकरके एक ब्राह्मणकूं दान की हुई गाय दूसरे ब्राह्मणकूं दान करनेसे दिये हुए ब्राह्मणके शापसे कृकल स्वरूपकी प्राप्ति होती भई, ऐसा कहते भये.॥ इससें कर्मकी गति बडी दुर्घट है. इसीपर भगवाननेंभी गीतामें कहा है॥ **गहना कर्मणो गतिः** ॥ इसका अर्थ यह है कि, कर्मकी गति अति गहन (न समझने सरीखी) है.

यह धर्मार्थकामके निर्णयकी चतुस्त्रिंशत्तमी युक्ति संपूर्ण हुई ॥ ३४ ॥

ॐ

नमो भगवते।

मनके साधनके निर्णयकी युक्ति।

अब मनके साधनके निर्णयकी२५वी युक्ति कहता हूं-एक राजा कोटमें रहता था. उसके उपर चार शत्रु सेना लेकर लढाईके अर्थ आये. तब राजानें मंत्रीकों लडनेके अर्थ आज्ञा दीनी. सो मंत्रीने अपनी सेना लेकरके लडाईभी करी और बलभी किया और फिर भाग आया;इसीप्रकार उस मंत्रीने कईवार शत्रुवोंको बुलाया और बल किया. फिर राजाके पास आया. तब राजानें विचार किया कि, यह सब मंत्रीका काम है. यही शत्रुवोंको बुलाता है, और मिलजाता है. सो इसनें हमकों बडा दुःख दिया.इससे इस मंत्रीको मारना चाहिये.इसको मारनेसेही सुख होय, ऐसा विचार करके राजानें उस मंत्रीकों हीरेकी कनी दीनी;सो हीरेकी कनीसे नहीं मरा.

तब उसके टुकडे टुकडे करवाये तिससेभी नहीं मरा.तब राजानें कहा इसकों भोजन नहीं देवो तो मर जायगा. सो भोजन न देनेसेभी नहीं मरा. फिर राजानें कहा, उसको शूलपर चढावो. सो शूलपर चढाया तोभी नहीं मरा. फिर राजानें विष दिया तिससेभी नहीं मरा. तब फेर अंधेरे कूवेमें डाल दिया सो अंधेरे कुवेमें भी नहीं मरा.तब राजा बहुत दुःखी हुवा कि,इतने उपाय इसको मारनेके लिये किये परंतु यह नहीं मरता. इस विचार-करके राजा उदास होकरके बैठा था, इतनेमें एक पुरुष आया उस पुरुषनें कहा कि, राजा तूं उदास क्यों है? तब राजानें कहा,महाराज ! इस मंत्रीने मुझकों बहुत दुःख दिया और इसकों मारनेके उपाय बहुत किये तोभी यह नहीं मरा; अब मैं क्या करूं! उस पुरुषनें उस राजाकों कहा कि, तूं अपने हाथमें खड्ग लेकरके इसकों मारेगा तो मरेगा; और दूसरा कोई उपाय इस्को मार-नेका नहीं. तब राजानें खड्ग लेकरके उस मंत्रीका शिर छेदन कर दिया. तब उस मंत्रीके मरनेसे कोट चारों ओरते ढह गया. और सर्व राज राजाका हुवा.

अब **दार्ष्टांतिक** कहते हैं. चेतनरूपी तो राजा है, तिसका अज्ञानरूपी कोट है, मनरूपी तिस राजाका मंत्री है, और काम क्रोध लोभ मोहरूपी शत्रु हैं वे शत्रु मनरूपी मंत्रीके बुलावने स्थानी संकल्प करके होते हैं और अनेक प्रकार जो शब्दादिक विषय हैं सो काम क्रोधादिककी सेना है. सोई मनरूपी मंत्री इंद्रियांरूपी अपनी सेना लेकरके काम क्रोधादिकसे मिलगया. और लडाई स्थानीं काम क्रोधादिकके संगसे मनने दुःखभी पाया. और राजाके पास आवने स्थानीं एकाकारभी होगया. शत्रुसे मिलने स्थानी विषयोंके आकार होगया. तब चैतन्यरूपी राजानें विचार किया कि, ये कामक्रोधादि शत्रु और इनकी सेना जे शब्दादिक विषय हैं. सो यह केवल मनरूपी मंत्रीके बुलावने स्थानी संकल्प करके चढ आवेहैं इससे इस मनरूपी मंत्रीको किसी प्रकार मारिये.तब कामक्रोधादिक विषयोंके जे दुःख हैं वे निवृत्त होते हैं. सो ऐसा विचार करके चेतनरूपी राजानें हीरेकी कनी देने स्था-

नीं मनरूपी मंत्रीसे यज्ञ करवाया. सोई यज्ञ करनेसे मनका अभाव नहीं हुवा. तब टुकडे टुकडे करने स्थानीं नाना प्रकारके दान करवाये,फिरभी मनरूपी मंत्रीका मरणरूपी अभाव नहीं हुआ.तब चेतनरूपी राजानें भूखे मारने स्थानी कृच्छ्र चांद्रायणादिक व्रत करवाये. फिरभी मरनेरूपी अभाव नहीं हुवा. तब चेतनरूपी राजानें इस मनरूपी मंत्रीकों शूलपर चढावनेरूपी तप कर्म करवाये सो तप कर्म करवानेसे भी मनरूपी मंत्रीका अभाव नहीं हुवा. तब चेतनरूपी राजानें मनरूपी मंत्री कों उपासनारूपी विष दिया सो उपासनारूपी विषसें भी नही मरा.

प्रश्नः—उपासनाकों विषस्थानीं किसप्रकार कहा?

उत्तरः--विषके भोजनसे बेसुध होते हैं; बेसुध कहिये अपनी सुध नही रहे तैसेंही उपासिकभी बेसुध है अर्थात् आपकों यथार्थ करके नहीं जानता. इससे उपासना विषके तुल्य है.

प्रश्नः—इसमें प्रमाण क्या?

उत्तरः—स्मृति प्रमाण है॥विषयान्विषवत्त्यज॥ इसका अर्थ देहादिक विषयोंको विषकीनांई त्याग दे. इसका अभिप्राय यह है कि, वह देहादिक करके संयुक्त पुरुष उपासना करता है. इससे उपासना रूपी विषसे भी मनरूपी मंत्रीका मरणरूपी अभाव नहीं हुवा. तब कूपमें डालनेरूपी योगकी समाधि करवाई. सो इसी-प्रकार योगकी समाधिसे अभाव नहीं हुआ. जब संपूर्ण उपायोंकरके मनरूपी मंत्रीका अभाव न हुआ तब चेतनरूपी राजाकों उदासीनता रूपी वैराग्य हुवा. तब किसी पुरुष स्थानीं ज्ञानीनें पूंछा कि, तूं काहेतें दुःखी हुवा. तब चेतनरूपी राजा कहता है कि, महाराज! मन रूपी मंत्रीने कामादिककी सेनासे मिलकरके बहुत दुःख दिया.फिर मैंने इस मनरूपी मंत्रीकों मारणरूपी शांती-के अर्थ हीरेकी कणी आदिकरूपी यज्ञादिक बहुत करवाये, परंतु यह दुष्ट नहीं मरा; यातें उदासीरूपी

दुःखी हूं. अब तुमनें पूंछा है तो कोई उपाय कहो. तब अन्य पुरुषरूपी ज्ञानी कहता है कि, ज्ञान रूपी खड्ग करके तूं इस मनरूपी मंत्रीका निषेधरूपी नाशकर. तब राजारूपी चेतननें ज्ञानरूपी खड्ग लेकरके मनरूपी मंत्रीका निषेधरूपी नाश किया,तिसहीकालमें अज्ञान रूपी गडके ढहनेरूपी अभाव होगया; तब फिर बाहरके संकल्प करके रहित चिदानंद राजा अखंड सत् चित् आनंदरूपकरके स्थित हुवा.

यह मनके साधनके निर्णयकी पंचत्रिंशत्तमी
युक्ति संपूर्ण हुई ॥ ३५ ॥

ॐ

नमः सच्चिदानंदाय।

कर्मादिकोंसे उत्तम ज्ञान प्राप्तिकी युक्ति।

अब कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनों करके उत्तम ज्ञानके प्राप्तिके निर्णयकी छत्तीसवी युक्ति कहता हूं-एक किसान था, तिसनें समुद्रके तटमें खेत बोया. सो तिस खेतकी रक्षाके निमित्त कुदाली लेकर ढिया खोदनें लगा सो उस ढियेमें चार सहस्र लाल निकसे. किसाननें देख करके कहा कि, ये पक्के गोले हैं. तिनको लेकरके डामचेके उपर जाबैठा. और गोफियेमें रखकरके पक्षियोंको उडावने लगा सो ऐसा गोला फेंकने लगा कि, किसी वृक्षकेभी नहीं लगा और समुद्रमें जाकरके पडा; इसही प्रकार संपूर्ण लाल फेंक दिये. एक लाल रह गया. तिस्कोंभी गोफियेमें रखकरके फेंकने लगा. इतनेंमें उसकी स्त्री आ गई. तिस स्त्रीनें कहा कि, तुमनें आज भोजन करनेकों विलंब क्यों किया? तब उस पुरुषनें कहा कि,

आज खेतमें पक्षी बहुत पडेथे; इससे विलंब हुआ. और लाल सहित गोफिया स्त्रीकों सोंप दिया. और कहाकि, तूं इसको ले चल, मैंभी आवता हूं. सो वह स्त्री लेकरके घरकों गई. घरमें जाकरके रसोईकी सामग्री देखनेलगी;जो देखै तो घरमें लोंन नहीं है और चूंन है.सो लोनके अर्थ पदार्थ देखने लगी, तो पैसा कौडी कोई नहीं पाया; तब उस लालकूं लेकरके लोंन लेनेको बनियेकी हाटपर गई, और बनियोंकूं कहा कि, इस वटियाका लोन हमकों दे.तब उस बनियेनें कहा कि, और कुछ अन्नादिक पदार्थ क्यों नहीं लाया? उस बनियेनें उस लालकों पाषाण जानकर फेक दिया और लोंन नहीं दिया. फेर वहांसे और हाटपर गई तिसनें भी लोन नहीं दिया और निरादर किया; इसही प्रकार चार हाटों पर फिरी, परंतु लोंन किसीनें नहीं दिया. तिसही कालमें कोई जौंहरी सन्मुख आया.तिस जौंहरीने देखा कि,यह तो लाल है. तब उस जौंहरीनें उस स्त्रीकोंकहा कि, इसका क्या मोल

लेवेंगी? तब उस स्त्रीनें कहा कि, जो इसका मोल आवे सो दे. तब उस जौंहरीनें कहा कि, इसका मोल क्या पूछे हैं? जो तेरी इच्छा होय सो ले. तब तिस जौंहरीनें उस स्त्रीकों बहुत कुछ पदार्थ दिये.तब उस स्त्रीनें उसकों उस वस्तुका नाम पूछा कि,इसका नाम क्या है?तब उस जौंहरीनें कहा कि इसका नाम रत्न है. फिर वह स्त्री संपूर्ण पदार्थ लेकर अपने घरमें आई; फिर उस स्त्रीनें एक तंबू लिया और छह दासियां और बुढियां रसोई करनेवाली मोल लीनीं और अच्छे सुंदर वस्त्र लिये. और बहुत सुंदर शृंगार करके और भूषण पहरके शय्याके उपर बैठी, और दीपक लगवाय दिया. सो स्त्री प्रथम किसानी थी अब राणी भई. इतनेमें उस स्त्रीका पुरुष आया, उस पुरुषनें तंबू देखके कहा कि, मेरा गृह कहां है सो देखता हुवा दूर खडा था. तब उसकी स्त्रीनें देखकरके कहा कि, वहां क्यों खडे हो? यहां आवो.तब उस पुरुषनें पूछा कि,यह पदार्थ कहांसे लाये? तब उस स्त्रीनें कहा कि,आप प्रथम स्नान करो

और भोजन करो, फेर मेरे निकट आकरके बैठो तब बताऊंगी. तब उस पुरुषनें स्नान किया और वस्त्र पहरे और भोजन किया और शय्याके उपर आकरके बैठा. और उस स्त्रीकों पूंछा कि यह ऐश्वर्य तूं कहांसे लाया? तब उस स्त्रीनें कहा कि, वह जो तुमनें गोफियमें धरके दियाथा, सो गोला लेकर मैनें घरमें धर दिया. और भोजन करनेके अर्थ मैंने देखा तो लौंन नहीं था. सो लोंनके अर्थ उस गोलेकों लेकरके वनियेकी हाटपर गई, सो वनियेनें कहाकि, अन्नादिक पदार्थ लोंनके निमित्त लावने थे. यह पाषाण क्या लायी है? ऐसा कहकर उसनें फेंक दिया. इसही प्रकार चार वनियोनें गोलेकों फेंक दिया. इतनेमें एक जौंहरी आया. उसनें तिसकों देख करके कहा कि, इसका मोल क्या लेगी? मैंने उस जौंहरीकों कहा कि, जो इस्का आवे सो देवो. तब उस जौंहरीनें यह संपूर्ण पदार्थ दिये. मैंने उस जौंहरीकों गोलेका नाम पूछा. तब उस जौंहरीनें कहा कि, इसका नाम रत्न है तिसहीका यह संपूर्ण

पदार्थ है, सो आया है. तब यह वार्ता सुनकरके वह पुरुष बहुत पछताया. उसने कहा कि देखो एक गोले रूपी रत्नका इतना पदार्थ आया है. और मोकूं बहुत रत्न मिले थे सो इतने रत्न मैंने वृथाही खो दिये. फेर उसने हर्षभी किया कि, जो गया सो गया. इतनाभी बहुत है. पश्चात् उस पुरुषनें स्त्रीकों कहा कि उस जौंहरीके निकट मुझकों ले चल. इस रत्नका कुछ और भी मोल रहा होगा. उस स्त्रीनें कहा कि, अच्छा. तब वह स्त्री उस पुरुषकों लेकरके जौंहरीके निकट गई. तब उस पुरुषनें उस जौंहरीकों कहा कि, उस रत्नका इतनाही मोल था अथवा और कुछ शेषभी रहा है? तब उस जौंहरीनें कहा कि, इसका मोल देनेकी मेरी सामर्थ्य नहीं है. मेरे पास इतनाही पदार्थ था सो मैंने दिया जो इसका मोल चाहो, तो हमारे शेठके पास जावो; तिसके हम गुमास्ते हैं. तब वह पुरुष उस स्त्रीकों लेकरके तिस सेठके पास गया. और तिस सेठकों पूंछा कि, जो तुमनें हमारा रत्न लिया है, तिसका इतनाही मोल

था अथवा कुछ और भी मोल है? और इसका नाम यथार्थ क्या है सो कहो. तब उस सेठनें कहा, सुन भाई! जो तूं इसका मोल पूंछता है तो सो मोल इतना है कि तेरे जन्मजन्मांतरोंके दरिद्र जाते रहैंगे. और इसका नाम लाल है. तब उस पुरुषनें कहा कि, इसका जो शेष रहा है सो देवो. तब उसनें उस पुरुषकों इतना पदार्थ दिया कि, उसके जन्म जन्मांतरोंके दरिद्र जाते रहे और दरिद्रके जातेही स्त्रीभी मर गई, अकेला पुरुष रहगया, और आनंद पूर्वक स्थित हुवा.

अब **दार्ष्टांतिक** कहते हैं, जीवरूपी किसाननें संसाररूपी समुद्रके अहंकाररूपी तटमें कर्मरूपी खेत किया. और वेदरूपी ढीयेके खोदनेंके निमित्त पुरुषार्थरूपी कुदाली लेकरके वेदरूपी ढिया खोदा. तिसमें मृत्तिकारूपी तो कर्मकांड और उपासनाकी श्रुतियां और चार सहस्र लालरूपी ज्ञानकी श्रुतियां निकसीं. तब जीवरूपी किसाननें कहा कि, ये पक्के गोलेरूपी श्रुतियां स्वर्गादिककी प्राप्तिकों कहते हैं. स्वर्गादि-

ककी प्राप्तिही मुक्ति है. यहां श्रुति भी प्रमाण है. सोई कहतें है ॥ **अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति** ॥ इसका अर्थ यह है कि, ह (स्फुटं) वै (निश्चयेन) निश्चयकरके चातुर्मास्यका यजन करनेवाला अक्षय स्वर्ग सुखको प्राप्त होता है. इसकों आदि लेके और श्रुतियां भी कहते हैं कि, कर्मकों निरूपण करे हैं. ईशावास्यके भाष्यमें मीमांसकनें कहा है कि, इन श्रुतियोंकोभी मंत्रसंज्ञा है. सोई प्रमाण लिखते हैं ॥ **ईशावास्यमित्यादयो मंत्राः कर्मशेषाः मंत्रत्वादिषेत्वेत्यादिमंत्रवदतः पृथक् प्रयोजनाद्यभावादव्याख्येयाः** ॥ इसका अर्थ यह है कि, "ईशावास्यं" इत्यादिक मंत्र कर्मशेष हैं अर्थात् कर्महीकों प्रतिपादन करते हैं. मंत्र हैं इससे "इषेत्वेत्यादिक" मंत्रकी नांई हैं. इसीसे भिन्न प्रयोजनादिकके अभावसे नहीं व्याख्यान करनेको योग्य है. तब वह जीवरूपी किसान अभिमानरूपी डामचे पर खडे होनेरूपी स्थित होकरके त्रिगुणात्मकरूपी

गोफियेमें गोलेरूप श्रुतिकों स्थित करके फिरावनेरूपी अर्थ लगावता भया. और ऐसा गोला फेंकनेस्थानी वृक्षनकों न लगे और पक्षियोंकों लगे. सो कहा कि, पक्षियोंके मारने रूपी बलदान करता भया. और वृक्षोंकी रक्षा करके यह कहा कि, यज्ञोंमें विघ्न नहीं होवे. और समुद्रमें डालने रूपी कहा,संसारमें अर्थ लगावता भया कि संसारही सिद्ध करता भया. इसही प्रकार संपूर्ण लालोंको फेंकनेस्थानीं संपूर्ण श्रुतियोंको कर्ममें लगा करके वर्ता. एक लाल रूपी श्रुति रह गई तिसकोंभी त्रिगुणात्मकरूपी गोफियेमें धरने स्थानी कर्मविषे अर्थ लगावने लगा. इतनेमें किसानी स्त्री रूपी पुरुषकी बुद्धि आवनेरूपी सन्मुख भई. तब बुद्धिरूपी स्त्रीनें कहा कि, प्रारब्धरूपी भोजनके अर्थ विलंब क्यों करी. तब जीवरूपी पुरुषनें कहा कि,यज्ञकी रक्षामें पक्षी मारने रूपी बलिदान बहुत किया, इससे विलंब भयी. और जीवरूपी पुरुषनें त्रिगुणात्मिकरूपी गोफियेमें "तत्त्वमसि" श्रुतिरूपी जो लाल धरा था सो बुद्धिरूपी

स्त्रीकों सौंप दिया. और यह कहा कि, तूं यह ले चल. पिछेसे मैंभी आऊंगा. इसकरके यह निर्णय हुआ कि बुद्धिके फुरनेसे पीछे चैतन्य वर्ते है. सो वह बुद्धिरूपी स्त्री गृहरूपी आश्रममें प्राप्त हुई. और देखा कि, गृहरूपी आश्रममें प्रारब्धके भोगरूपी चून है, पर लौंन नहीं रूपी एकरस सुख नहीं; तब बुद्धिरूपी स्त्रीकों एकरस सुखरूपी लोंनके अर्थ कौडी पैसा नहीं पावनेरूपी अन्य शास्त्रवादियोंके मतोंविषे इच्छा नहीं पाई. तब बुद्धिरूपी स्त्री "**तत्त्वमसि**" श्रुतिरूपी लालकों लेकरके नैयायिक, वैशेषिक, पातंजलि और सांख्य इन चारों शास्त्रवाले वैश्योंरूपी आचार्योंके पास गई. और लोंनलेनेरूपी यह कहा कि, इस श्रुतिकरके मुझकों उपदेश ऐसा करो कि, एकरस सुखकी प्राप्ति होय. इसनें चारों शास्त्रवाले पुरुषरूपी वनियेनें कहा कि, हमारे मतकी श्रुतिरूपी पदार्थ लावती तो तुझकों लोंनरूपी सुख मिलता. इसही कालमें वेदांतिरूपी जौंहरीने देखा कि, लालरूपी "**तत्त्वमसि**"

श्रुति है.तब उस वेदांतीरूपी जौंहरीने बुद्धिरूपी स्त्रीकों कहा कि, इस लालके मोल लेनेरूपी" तत्त्वमसि"इस श्रुतिका अर्थ किसप्रकार ग्रहण करेगी. तब बुद्धिरूपी स्त्रीनें कहा कि, इसका जो आवै सो दो. इसकरके यह कहा कि, यथार्थ जो इस श्रुतिका अभिप्राय होय, सो मुझकों उपदेश करनेंरूपी देवो. तब वेदांतीरूपी जौंहरीनें कहा कि, इसके आवनेको क्या कहे है, जो तेरी इच्छा होय सो ले. इसकरके यह कहा कि, जितना तुझकों अधिकार है उसप्रकार अर्थकों ग्रहण कर.तब उस वेदांतीरूपी जौंहरीनें उसकों बहुत कुछ देने स्थानीं उपदेश किया. और बुद्धिरूपी स्त्रीनें जो नाम पूंछा और जौहरीनें नाम बताया इसकरके यह कहा कि, इस श्रुतिका अर्थ इसप्रकार किया कि,"**तस्य त्वं असि**" इसका अर्थ तिसीका तूं है.

प्रश्नः—जौंहरीरूपी वेदांतीनें उपासना विषे श्रुतिका अर्थ किसप्रकार लगाया?

उत्तरः—सुन भाई! उपदेश अधिकारीकों होता है. ऐसा उपासनाकाही अधिकारी होता है. प्रथम उपदेश सामान्यही होता है, फिर विशेषभी होता है.

प्रश्नः—इसविषे प्रमाण क्या है?

उत्तरः—इसविषे प्रमाण गीतामें कहा है ॥ **न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम् ॥ जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन् ॥१॥** इसका अर्थ यह है कि, अज्ञानियोंकी और कर्मनिष्ठावालोंकी बुद्धियोंमें भेदका उपदेश नहीं करे अर्थात् अकर्ता आत्माका उपदेश नहीं करे. ज्ञानी आपभी कर्म करता हुवा, सर्वथा कर्मोंविषे जोड दे ॥ १ ॥ तब बुद्धिरूपी स्त्री उपासनारूपी पदार्थकों लेकरके साधनचतुष्टय जो बताये थे सो लेकर विचाररूपी दीपक और वैराग्यरूपी तंबू और षट्संपत्तिरूपी छह दासियां और मुमुक्षुतारूपी शय्या बिछायी. और प्रारब्धरूपी बुढिया रसोई करनेवाली स्थित करी. और संतोषरूपी भोजन पाय करके, शीलरूपी शृंगार करके

मुमुक्षुतारूपी शय्यापर स्थित होतीभई. और किसानी-से रानी होनेरूपी अव्यवसायात्मिक बुद्धिसे व्यवसाया-त्मिक बुद्धिरूपी राणी होती भई. इतनेंमें जीवरूपी किसान आगया. और विचार करता भया कि, मेरा घररूपी वर्ण कहां गया. तब बुद्धिरूपी स्त्री देखनेरूपी सन्मुख होती भई. तब जीवरूपी किसाननें कहा कि, यह पदार्थरूपी साधन कहांसे बनाया? तब बुद्धिरूपी स्त्रीनें जीवरूपी पुरुषकों भीतर बाहरके पवित्र होनेरूपी स्नान करवाया, और संतोषरूपी भोजन करवाया; और आश्रमरूपी वस्त्र पहिराया, और मुमुक्षुतारूपी शय्याके उपर बुद्धिरूपी स्त्री जीवरूपी किसानके संग एकताको प्राप्त होती भई.

प्रश्नः—चैतन्यपुरुषकों ऐसे साधन किसप्रकार है? कारण उसको तो सुधभी नहीं है. और इसविषे प्रमाण क्या है?

उत्तरः—इसविषे श्रुति प्रमाण है ॥ अकस्मात्क-थंचित्पुण्यवशाद्वेदोदितेनेश्वरार्थकर्मानुष्ठाने-

नाऽपगतरागादिमलः, अनित्यादिदोषदर्शनेन नित्यानित्यवस्तुविवेकः, इहामुत्रफलभोगविरागः, वेदांतेभ्यो प्रतीयमानं ब्रह्मात्मभानं बुभुत्सुः ॥ इसका अर्थ यह है कि, अकस्मात् किसीके पुण्यके वशसे वेदके कहे ईश्वरेक अर्थ कर्मोंका अनुष्ठान करके निवृत्त भये हैं रागादि मल जिसके, अनित्यादिक दोष देख करके नित्य और अनित्य वस्तुका विचार, इसलोकके और परलोकके अर्थ फल और भोगोंका त्याग, उपनिषदोंसे प्रतीतिमान ब्रह्मात्मभावके जाननेंकी इच्छा करते हैं.

प्रश्नः—बुद्धिविना पुरुषसे व्यवहार किसप्रकार सिद्ध किया ?

उत्तरः—मनरूपी संकल्पसे व्यवहार सिद्ध किया तब बुद्धिरूपी स्त्री चैतन्यरूपी पुरुषकों वृत्तांत कहने लगी. अर्थ क्या कि, संपूर्ण वृत्तांत जिसप्रकार भया था, सो कहा. तब उस पुरुषको वृत्तांत श्रवण करके बहुत पश्चात्तापरूपी

अनिर्वचनीय दृष्टि भयी कि, अपने लाल वृथा खोवने-रूपी मैंने उन श्रुतियोंका अर्थ कर्मविषे जान करके वर्ता. फेर आनंदभी माना कि, भलां. कर्मादिकोंकरके अधिकारी तो भया. फिर उस जीवरूपी पुरुषनें बुद्धि-रूपी स्त्रीकों कहा कि, मुझकों वेदांतीरूपी जौंहरीके सन्मुख कर. मैं पूछूंगा कि, लालरूपी श्रुतिका अर्थ कुछ और भी शेष रहा है? तब बुद्धिरूपी स्त्रीनें जीव-रूपी पुरुषकों वेदांतीरूपी जौंहरीके सन्मुख किया. तब जीवरूपी पुरुषनें वेदांतीरूपी जौंहरीकों प्रश्न किया कि इस श्रुतिका यही उपदेश है अथवा और भी कुछ है? तब वेदांतीरूपी जौंहरीनें कहा कि, मेरा इतनाही उपदेश करनेमें सामर्थ्य था. जो इसका मोलरूपी यथार्थ निश्चय उपदेश चाहे तो हमारे सेठ-रूपी ज्ञानीके निकट जावो.

प्रश्नः--वेदांतीविषे अधिक उनका विकल्प क्यों किया ?

उत्तरः--शिष्यकी दृष्टि लेकरके कहा है; तब जीवरूपी

पुरुष बुद्धिरूपी स्त्रीकों संग लेकरके ज्ञानीरूपी सेठके निकट गया. और यही प्रश्न किया कि, हमारे लालरूपी "**तत्त्वमसि**" श्रुतिका मोलरूपी निर्णयका यही उपदेश है? कि जो उपासनापर कहा है? अथवा कुछ औरभी शेष रहा है और इसका नाम यथार्थ क्या हैं? तब उस सेठरूपी ज्ञानीनें कहा कि, इसका यथार्थ मोलरूपी निर्णय तो इसप्रकार है, जो तूं ग्रहण करे तो तेरे जन्मजन्मांतरोंका दरिद्ररूपी अज्ञान नाश हो जाय. इसका नाम लालस्थानी ज्ञान कहा है कि "**तत् त्वं असि**" सो ब्रह्म तूं है. और सत् पदार्थ देनेरूपी उपदेश करनेसे जन्म जन्मांतरोंके दरिद्र नाश होनेरूपी समग्र अज्ञानका नाश होगया. और स्त्रीके मरणरूपी बुद्धिका अभाव होगया कि, सूक्ष्मकारणका अभाव होगया और आनंदपूर्वकही स्थित रहा.

प्रश्नः--इस पुरुषकों ऐसे गुरुकी किसप्रकार प्राप्ति होगई ? कारण यह तो ढूंढने गयाभी नहीं.

उत्तरः—रे भाई! ज्ञानका उपदेष्टा जो आचार्य है तिसकी प्राप्ति ईश्वरकी कृपासे होती है.

प्रश्नः—इसविषे प्रमाण क्या है?

उत्तरः—रामचंद्रजीकों कहा हुआ वसिष्ठजीका वचन प्रमाण है ॥ **यावन्नानुग्रहः कश्चिज्जायते परमेश्वरात्।तावन्न सद्गुरुः कश्चित्सच्छास्त्रं नोपलभ्यते॥१॥**इसका अर्थ, जबतांई किसी पुरुषकों परमेश्वरसे साक्षात् अनुग्रह नहीं होय, तबतांई किसी सद्गुरु औरं सच्छास्त्रकी प्राप्ति नहीं होय॥१॥इससें इसकों पूर्व उपासनाका उपदेश था.उसके वशसे ईश्वरकी कृपासे सत्शास्त्रकरके संपन्न गुरुकी प्राप्ति हुई.

यह कर्म उपासना और ज्ञान इन तीनों करके
उत्तम ज्ञानकी प्राप्तिके निर्णयकी षट्त्रिंश-
त्तमी युक्ति संपूर्ण हुई ॥ ३६ ॥

ॐ

नमः परमात्मने ।

मोक्षप्राप्तिके निर्णयकी युक्ति ।

अब जगतकी उत्पत्तिके निर्णयमें मोक्षस्वरूपकी प्राप्तिके निर्णयकी ३७ वी युक्ति कहताहूं–

वादी पूंछता है, जगतकी उत्पत्ति किसप्रकार हुई?

सिद्धांती कहता है. जगत् ईश्वरके संकल्पसे उत्पन्न हुवा है.

प्रश्नः–ईश्वर तो स्वतः ज्ञानस्वरूप है तो ईश्वरको संकल्प कहां संभवता है?

उत्तरः–ईश्वरका लक्ष्यार्थ ज्ञानस्वरूप है.और वाच्यार्थ अज्ञानोपहित चैतन्य ईश्वरको कहते हैं. कारण ईश्वरको सगुण कहते हैं. सगुण अज्ञानोपहितका नाम है.

मे प्रश्नः--ज्ञानस्वरूपमें अज्ञान कैसे संभव होय?

उत्तरः—रे वादी! अज्ञान मायाका नाम है. और सो माया ईश्वरके वशवर्ती है. ईश्वर मायाके वशवर्ती नहीं है और जीव अज्ञानके वशवर्ती है; यातें जगत्की उत्पत्तिका कारण ईश्वरही है.

प्रश्नः—इसविषे प्रमाण क्या है?

उत्तरः--यहां व्यासजीका सूत्र प्रमाण है ॥ **ईक्षतेर्नाशब्दम्**॥इसका अर्थ, प्रधानादिक जगत्का कारण नहीं है; काहेतैं " **अशब्दत्वात्**" अशब्दसे अर्थात् वेदबाह्यसे प्रधानादिककों जगतका कारण कहना असत्य है. इससे तो जगतका कारण कौंन है? ईक्षणमात्रके श्रवण करनेसे ईक्षण कहिये विचार अर्थात् इच्छामात्रसें श्रवण किया जगत् वेदकी प्रमाणतामें हेतुरूप है.इसविषे प्रमाण श्रुतिभी कहते हैं ॥ **तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति**॥ इसका अर्थ यह है कि, सो चैतन्य विचार करता भया अर्थात् इच्छा करता भया कि, अनेकरूप हो जाऊं और ईश्वर सर्वज्ञ है. इस ईश्वरकी माया त्रिगुणात्मिक है; गुणके संयोगसे जग

तकी कल्पना करता है. वास्तवसे ईश्वरमें जगत् नहीं. मुमुक्षुके अर्थ अध्यारोपके लिये ईश्वरसें जगत्की उत्पत्ति कहते हैं. और जीवसे जगतकी उत्पत्ति नहीं होती. कारण जीव अल्पज्ञ है, इससे जो अल्पज्ञ होय सो सर्वका प्रेरक नहीं संभवे. और सर्वके पालन करनेको और सर्वकों जाननेकों समर्थ नहीं तो जगत् किसीके आधार रहे. इससे ईश्वरही जगत्का कारण है. इसविषे स्मृति प्रमाण है ॥**ईश्वरः सर्वनिर्माता नेहान्य इति निश्चयी ॥ अंतर्गलितसर्वाशः शांतः क्वापि न सज्जते** ॥ १ ॥ इसका अर्थ यह है, इस विचारमें ईश्वरही संपूर्णका उत्पत्ति करनेवाला है, दूसरा कोई नहीं. ऐसा निश्चयवान् पुरुष, अंतर्गलित हुई है संपूर्ण आशा जिसकी इससे शांत होनेसे कर्तृत्वका कुछभी अभिमान नहीं करता है.

प्रश्नः—महाराज ! जो जगत् वास्तव नहीं पाया तो मिथ्या हुवा. तो मिथ्या वस्तुमें आसक्ति कैसे हुई?

उत्तरः—मिथ्या वस्तुमें भी आसक्ति होती है. जैसे चित्रामविषे स्त्रीकों आदिलेकर पदार्थ आसक्ति करते हैं.

प्रश्नः—मिथ्या वस्तुभान कैसे होता है इसका आधार तो कोईभी नहीं.

उत्तरः—भ्रांतिके आश्रय भान होता है.

प्रश्नः—इसविषे प्रमाण क्या है?

उत्तरः—इसविषे स्मृति प्रमाण है ॥ **अहो मयि स्थितं विश्वं वस्तुतो न मयि स्थितं ॥ न मे बंधो न मोक्षो वा भ्रांतिः शांता निराश्रया॥** इसका अर्थ अहो इति आश्चर्यें (आश्चर्य) मुझमें स्थितभी विश्व वास्तवसे मुझमें स्थित नहीं है. मेरेको बंध नहीं है अथवा फिर मोक्षभी नहीं है. इस विचारसे भ्रांतीहीकी शांती है. कैसी भ्रांती है कि आश्रय रहित है.

प्रश्नः—यह भ्रांति किसप्रकार निवृत्त होवे?

उत्तरः—श्रवण मनन निदिध्यासनसें भ्रांति निवृत्त होती है.

प्रश्नः—श्रवणादिक किसप्रकार बनें?

उत्तरः—श्रवणादिक सत्संगसे होते हैं.

प्रश्नः—सत्संग किसप्रकार बनें?

उत्तरः—अपनी इच्छासे.

प्रश्नः—अपनी इच्छा किसप्रकार होती है?

उत्तरः—जब पूर्वके संस्कार होवे तब इच्छा होवे.

प्रश्नः—इसविषे प्रमाण क्या है?

उत्तरः— इसविषे भगवानका वचन प्रमाण है **॥अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परांगतिम्॥** इसका अर्थ यह है, भले प्रकार अनेक जन्मोंकी सिद्धि (संस्कार) होनेसे पश्चात् मोक्षको प्राप्त होता है.

प्रश्नः—तो संस्कारजन्य ज्ञान हुवा. फेर पुरुषार्थका क्या कार्य रहा?

उत्तरः—रे भाई! सुन. संस्कारसे इतना कार्य सिद्ध होता है कि, स्मृति होती है. सो स्मृतिमें कहाभी है. **॥संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृतिः॥** इसका अर्थ यह है कि, संस्कार मात्रसे उत्पन्न हुये ज्ञानको स्मृति

कहते हैं. स्मृति कहिये याद आई है तिसकी प्राप्तिके अर्थ पुरुषार्थ चाहिये. और जन्मांतरोंमें किया है इससे संस्कारभी तेराही पुरुषार्थ है.

प्रश्नः–श्रवणादिक किसप्रकार हैं?

उत्तरः--प्रथम श्रवण षट् प्रकारका है सोई कहते हैं-- उपक्रम उपसंहार एकलिंग है १ अभ्यास २ अपूर्वता ३ फल ४ अर्थवाद५उपपत्ति६उत्पत्तिके पहिले यह जगत् सत्तामात्रही था. इसप्रकार छांदोग्य उपनिषद्के छठे प्रपाठक प्रकरणमें कहा है. इसकों उपक्रम कहते हैं. प्रतीतिमान संपूर्ण यह जगत् पहलें कहा हुवा सत्स्वरूप ही है और अबभी सतरूपही है.इसकों उपसंहार कहते हैं इन दोनोंका एकलिंग हुवा॥१॥जिस आत्माका प्रकरण चलावे है, तिसके मध्यमें "**तत्त्वमसि**" इस श्रुतिकों नव संख्याके उपदेश करके मनन करनेंको अभ्यास कहे हैं २

प्रश्नः–सो नव गणना कौंनसी है?

उत्तरः–उद्दालकजी श्वेतकेतुकों उपदेश करै हैं कि, सुषुप्ति और मरणविषे जिसरूपकरके जीव ब्रह्मकों प्राप्त होता है सो ब्रह्म तूं है इसप्रकार पितानें उपदेश किया॥१॥

प्रश्नः--श्वेतकेतू पूंछै है कि, प्रजा सुषुप्तिमें सत्स्वरूपकों प्राप्त हुई, तो तिस ब्रह्मात्मत्वकों क्यों नहीं जानती है?

उत्तरः--जैसे माखियोंने लाये हुए नानावृक्षोंके रसके समुदायसे रस नहीं जानते कि, हम अमुक अमुक वृक्षके हैं; तैसेही सुषुप्तिमें ब्रह्मकों प्राप्त हुएभी नहीं जानते हैं. इसप्रकार आशंकाकों निवारण करके उपदेश करते हैं कि सो ब्रह्म तूं है॥२॥

प्रश्नः--सुषुप्तिमें इंद्रियोंके अभावसे नहीं जानते परंतु सुषुप्तिसे उठे हुए तो जाने कि हम ब्रह्मतें उठे. इसप्रकार क्यों नहीं जानते?

उत्तरः--जैसे मेघोंकरके समुद्रसे लाए हुए जल नदियोंको प्राप्त होते हैं. सो जल समुद्रसे आवनेंकों नहीं जानते हैं. तैसेही ब्रह्मसे उठे हुए जीव तिस ब्रह्म-

करके सहित एकताको नहीं जानते. इस उत्तर करके फेर सोई उपदेश करते हैं कि, सोई ब्रह्म तूं है ॥ ३ ॥

प्रश्नः--तैसेही सुषुप्तिमें जीवकों कारणात्मा करके अभावकी प्राप्ति होनेसे समुद्र तरंगादिककी नांई नाशकी शंका होती है ?

उत्तरः--जैसें वृक्षकों कुहाडे आदिकरके छेदनेसे रसके वहनेसे सजी बनताहै तैसेही सुषुप्तिमें देहविषे निश्चयं करके लाल रंगका देखनेसे जीवका नाश नहीं हुवा. इस उत्तर करके उपदेश करै हैं कि सो ब्रह्म तूं हैं ॥ ४ ॥

प्रश्नः--सूक्ष्म ब्रह्मके सकाशसें स्थूल जगतकी उत्पत्ति किसप्रकार होती है?

उत्तरः--जैसें वटके सूक्ष्म बीजसे स्थूल वृक्षकी उत्पत्ति होती है, तिसकी नाई सूक्ष्म ब्रह्मसे स्थूल जगतकी उत्पत्तिके संभव होता है. इस उत्तर करके फेर उपदेश करै है कि, सो ब्रह्म तूं है ॥ ५॥

प्रश्नः--जगतका मूल कारण ब्रह्म प्रत्यक्ष क्यों नहीं भान होता ?

उत्तरः--जैसे जलमें गेरा हुवा लोंनका डला स्पर्श और दरशन दोनों करके प्राप्त नहीं होनेसेभी जिव्हासे लवणका सत्वभाव निश्चय होता है, तैसेंही चक्षुरादिक इंद्रियोंकरके ब्रह्म अदृष्टभी है, परंतु कार्यरूप चिन्हसे अस्ति (है) मात्र सिद्ध है. ऐसे उत्तरकरके फेर उपदेश करे हैं कि, सो ब्रह्म तूं है ॥६॥

प्रश्नः--ब्रह्मके साक्षात्कारमें क्या उपाय है ?

उत्तरः--जैसे गांधार देशसे वनमें चोरोंकरके गेरा हुवा, और बंधे हैं नेत्र जिसके, तिस पुरुषको नेत्रके बंधनका जो खोलना सोई गंधार देशका उपदेश है. तैसेंही आचार्यके किये हुए उपदेशसें ब्रह्मका साक्षात्कार और अविद्याकी निवृत्ति होतीहै. इस उत्तरकरके फेर उपदेश करे हैं कि, ब्रह्म तूंही है ॥ ७ ॥

प्रश्नः--सो विद्वान् ब्रह्मकों किसप्रकार प्राप्त होता है?

उत्तरः--मन आदिकोंके लय होनेसे ज्ञान दीपक प्रकाशता है तब ब्रह्मकों प्राप्त होता है. अर्चादिक मार्गकी अपेक्षा नहीं अर्थात् अर्चा (उपासना) और धूम्र मार्गकी अपेक्षा नहीं है. और जें अज्ञानी हैं ते

देहांतरकों ग्रहण करते हैं इस उत्तर करके फेर उपदेश करै हैं कि, सो ब्रह्म तूं है ॥ ८ ॥

प्रश्नः--जे मरे हुए और मोक्षकों प्राप्त हुए ब्रह्मकों प्राप्त होते हैं, तो अज्ञानीकी नांई ज्ञानी फेर क्यों नहीं जन्मकों प्राप्त होता?

उत्तरः--जैसे तपाया हुआ लोहपिंड ग्रहण करनेसे चोरी करनेवालेका हाथ जलाता है और चोरी न करनेवालेका हाथ नहीं जलाता है. तैसेही मरण कालमें ज्ञानी और अज्ञानीकी समान अवस्थामें सत् ब्रह्मकों प्राप्त होनेसे ज्ञानी फेर देहकों नहीं ग्रहण करता है और मिथ्या देहादिकोंमें आत्मबुद्धि मानके अज्ञानी शरीरको ग्रहण करता है. इस उत्तर पूर्वक उपदेश करै है कि, सो ब्रह्म तूं है. स्वगतभेद ब्रह्म निरवयव और निर्धर्ममें संभव होता है. इति नव युक्तिः ॥ ९ ॥

सिद्धांती ही कहता है कि, प्रमाणोंके मध्यमें लक्षणा करके प्राप्त होनेकों योग्य आत्मा है नहीं. और प्रकार इस विचारकों अपूर्वता

कहते हैं. ॥३॥ प्रारब्धके नाश पर्यंत देह इंद्रियों विषे मिथ्या प्रतीति होती है. और प्रारब्धका समग्र नाश होनेसें इस मिथ्या प्रतीतिकी अप्रतीतिपूर्वक मिथ्या प्रतीति न रहे. कारण अद्वितीय आत्मस्वरूप करके स्थित है. तिसके वर्णन करनेकों फल कहते हैं. ॥ ४ ॥ हे श्वेतकेतू! तूनें गुरुकों, प्रकरण करके प्रतिपादन करनेकों योग्य जो आत्मा तिसके उपदेशकों पूंछा था कि, जिस करके नहिं सुना सुना जाय, नहीं माना माना जाय, नहीं जाना जाना जाय, इसकों आदि लेकर श्रुतियों करके स्तुतिकों अर्थवाद कहते हैं ॥ ५ ॥ जैसे मृत्तिकासे उत्पन्न हुए घटशरावादिकोंकी मृत्तिकासे अभिन्नता है. अथवा सुवर्णसे उत्पन्न हुए कटककुंडलादिकोंकी सुवर्णसे अभिन्नता है. तैसेंही कारणसे उत्पन्न हुए जगतकी कारणसे अभिन्नता है. इत्यादिक श्रुतियोंकरके वर्णन करनेकों उपपत्ति कहते है ॥ ६ ॥

प्रश्नः--मनन किसकों कहते हैं?

उत्तरः—युक्तिपूर्वक विचारनेकों मनन कहते हैं.

प्रश्नः—निदिध्यासन किसकों कहते हैं?

उत्तरः--सजातीय प्रत्ययका प्रवाह और विजातीय प्रत्ययका तिरस्कार तिसकों निदिध्यासन कहते हैं. इन श्रवणादिकों करके आत्मस्वरूपका साक्षात्कार होता है.

प्रश्नः--इसका प्रमाण कहो.

उत्तरः--इसका प्रमाण श्रुति कहते हैं ॥ **आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः** ॥ इसका अर्थ, अरे मैत्रेयी! आत्माही साक्षात्कार करनेकों योग्य है, आत्माही श्रवण करनेकों योग्य है, आत्माही मनन करनेकों योग्य है, आत्मा निदिध्यासन करनेकों योग्य है.

प्रश्नः--श्रुतिनें द्रष्टव्य प्रथम कहा और श्रवणादिक पीछे कहे, यातें व्यवस्था नहीं बनी.

उत्तरः--रे भाई! सुन. वेदांतमें यह रीति है कि, पहले फल दिखायकरके श्रवणादिकका उपदेश करते हैं.

इति जगतकी उत्पत्तिके निर्णयमें मोक्ष स्वरूपके
प्राप्तिकी सप्तत्रिंशत्तमी युक्ति
संपूर्ण हुई ॥ ३७ ॥

ॐ

नमः सच्चिदानंदाय।

वेदसारार्थनिर्णयकी युक्ति।

अब वेदके सारार्थके निर्णयकी अडतीसवी युक्ति कहताहूं-एक ग्राममें ब्राह्मण रहता था, तिसकों एक स्त्री थी, और एक पुत्र और कन्या दो अपत्य थीं. उस ब्राह्मणनें एक ब्राह्मणके संग अपनी पुत्रीका संबंध किया. और दूसरे ब्राह्मणके साथ उसकी स्त्रीनें उसी कन्याका संबंध किया. और उसही कन्याका संबंध उसही ब्राह्मणके पुत्रनें तीसरे ब्राह्मणके संग किया. फिर कोई दिन वीते. और वह कन्या मर गई. जिन पुरुषोंकेसाथ उस कन्याका संबंध किया था, उन्होंनें सुना और सुनकरके तीनों पुरुष आये और उस कन्याके पितानें काष्ठसंग्रहकरके उस कन्याको दाह कर दिया. उन तीन पुरुषोंमें एक पुरुष तो उस कन्याके साथ जल गया. जिसके साथ उसके भाईनें संबंध

किया था सो और एक पुरुष कुटी बांधकर उस कन्याकी चिताके पास बैठ गया.जिसके साथ इसके पितानें संबंध कियाथा सो एक पुरुष देशाटनकों चला गया. जिसके साथ उसकी स्त्रीनें संबंध किया था सो तीर्थयात्रा करता हुआ एक ब्राह्मणके घरमें जाकरके भिक्षा मांगी. उस घरवाले ब्राह्मणनें अपनी स्त्रीकों कहा कि, इस ब्राह्मणकों भिक्षा करवाय दे. तब वह स्त्री चूल्हेमें अग्नि प्रज्वलित करके रसोई बनावने लगी. तब उस ब्राह्मणीका लडका रोनें लगा और कुछ वस्तु मांगी, सो देकर उस ब्राह्मणीनें उस लडकेकों समझाया, परंतु वह बालक नहीं समझा.तब उस ब्राह्मणीनें उस लडकेका शिर पकडके अग्निमें देदिया. तब वह परदेशी ब्राह्मण देख करके चलने लगा.इतनेमें उस स्त्रीका पुरुष आगया. और उस पुरुषनें उस भिक्षुकको कहा कि, तुम भिक्षा पाय करके जावो, ऐसे कहां जावो हो. तब उसनें कहा कि, तुम दुष्ट हो? अपना पुत्र तुमनें चूल्हेमें देदिया. तुम्हारे घर किसप्रकार भोजन कीजिये. तब उस घर-

वाले ब्राह्मणनें कहा कि, इस पुत्रकों हम जिवाय देवेंगें तुम भोजन करो. सो उसनें संजीवनी विद्या पढके उस लडकेकों जिवाय दिया. तब वह भिक्षुक देख करके बहुत प्रसन्न हुवा कि, यह बडी उत्तम विद्या है. किसीप्रकार यह विद्या इनसे लीजिये. उस ब्राह्मणनें भोजनकरके उनकों प्रार्थना करी कि, महाराज! तुम यह विद्या मुझकों देवो. तब उस घरवाले ब्राह्मणनें कहा कि, तुम हमारा उपदेश लेओ. उसनें कहा कि, अच्छा हम तुम्हारा उपदेश ग्रहण करेंगे, तुम यह विद्या हमकों देवो. सो उस ब्राह्मणनें उनका उपदेश लेकरके वह विद्या पढी; जब भलेप्रकार वह संजीवनी विद्या उसकों आई, तब उसनें ऐसी इच्छा करी कि, जो हमारी स्त्री दाह करी है तिसकों इस विद्याकरके जिवावेंगे. सो वहांसे चलकरकें जहां उस कन्याको दाह किया था, उसी स्थानपर आया. उसी स्थानपर आयकरके उस विद्याका उच्चार किया. उच्चार करतेही वह कन्या और उसके साथ जो पुरुष जलगया था सोभी दोनों उठ

खडे भये. और तीसरा पुरुष कुटी बांधकरके वहांही बैठा था. अब हम वार्ता पूछते हैं कि, इन तीनों पुरुषोंमें इस स्त्रीका कौंन अधिकारी है? इस वार्ताकों श्रवण करके उस कन्याका पिता आया, तब तीनों पुरुषोंनें उस कन्याके पितासें कन्या मागी कि, हमकों कन्या विवाह दे. उस कन्याके पिताने जिस पुरुषनें कन्या जिवाई थी उस उरुषकों कहा कि, तुमनें यह कन्या उत्पन्न करी है, इसीसे तूं तो इसका पिता भया. तुझकों उस कन्याका अधिकार नहीं है. और जो पुरुष उस कन्याके साथ जल गया था, उस पुरुषकों कहा कि तूं इस कन्याके साथ जन्मा है इससे तूं इसका भाई हुवा. इसीसे तुझकोंभी इस कन्याका अधिकार नहीं है. तब वह तीसरा पुरुष जो कुटी बांधकरके बैठा था उसनें कहा कि, हमकों देवो, तब कन्याके पितानें कहाकि, तेरे साथ तो हमनें संबंधही किया है. तुझको इस कन्याका अधिकार है. इससे एक वेदपाठी पंडितकों बुलायकरके तेरा विवाह कर देवेंगे. सोई कुटी बांधनेंवाला

पुरुष विवाहके अर्थ गया और उसका विवाह करके कन्या उसको देदी.तब ब्राह्मण आपके घेर उस कन्याकूं लेगया. फेर उस कन्याकों पुत्र भया उसनें अपना घर बसाया.

अब **दार्ष्टांत** कहते हैं कि, वेदरूपी ग्राममें ज्ञानकाडरूपी ब्राह्मण और उपासना कांडरूपी उसकी स्त्री, जिसकूं भक्ति कहते हैं और कर्मकांडरूपी तिसका पुत्र और परा शांतिरूपी तिसकी पुत्री है. सो उस ज्ञान कांडरूपी ब्राह्मणनें अपनी पराशांतिरूपी कन्या मुमुक्षुरूपी ब्राह्मणकों सगाई स्थानी देनी करी. और तिसकी उपासना कांडरूपी स्त्रीनें उपासनाके जिज्ञासूकों संबंधस्थानी देनी करी और कर्मकांडरूपी पुत्रनें कर्मेष्टी जिज्ञासूंको संबंधस्थानी देनी करी.सो कन्या कोई कालमें मरनें स्थानीं उस पराशांतिरूपी विद्याका विक्षेप पड गया कि, मरणरूपी लोप हो गयी; अर्थात् तिसका कोई अधिकारी नहीं रहा.

प्रश्नः--विद्याके नाशविषे कोई प्रमाण कहो ?

उत्तरः--इसविषे गीतामें प्रमाण कहा है ॥ **एवं परंपराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ॥ सकालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥ १ ॥** इसका अर्थ कहे हुए प्रकार परंपरा करके प्राप्त राजऋषी इस योगकों जानते हैं. हे अर्जुन ! सो योग महान् कालके वशसे इस लोकविषे विछिन्न हो गया है. इसप्रकार भगवाननें कहा है. और ज्ञानके लोप होनेसे कर्म उपासना भी लोप होतीहै तब परमेश्वर अवतार लेता है. सोई भगवाननें कहा है ॥ **यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ॥ अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ १ ॥** इसका अर्थ यह है कि,हे अर्जुन! निश्चयकरके जिस जिस कालमें धर्मकी हानी होती है और अधर्मकी आधिक्यता होती है, तिस तिस कालमें मैं आपकों उत्पन्न करता हूं. अर्थात् मैं अवतार लेता हूं. और दाहस्थानीं इसकों अष्टांगरूपी काष्ठ और योग रूपी अग्निमें दाहरूपी लय कर दीनीं. फेर तीनों पुरुष उपासनाका जिज्ञासु और

कर्मका जिज्ञासु और ज्ञानका मुमुक्षुरूपी तीनों आये. सो कर्मेष्टि जिज्ञासु तिसके संगही जल गया. तिसनें ऐसा जाना कि, कर्मका फल तो योगमें गया, हम रहकरके क्या करेंगे. क्यों कि, कर्मके फल और योगके फल एक हैं. इन करके योगका और कर्मका एक अंग है. सो कर्मेष्टी जल गया. और ज्ञानका जो मुमुक्षु था सो वैराग्यरूपी स्थितिकों लेकरके स्थित हो गया.और उपासनाका जिज्ञासु जो था सो तिर्थयात्राकों चला गया. सो उपासनाका जिज्ञासु जो तीर्थयात्राकों गया था, सो ब्राह्मणरूपी उपासनाके आचार्यके घरमें भिक्षारूपी उपासना मांगी. उस उपासनाके आचार्यनें क्षमारूपी स्त्रीकों कहा कि यह उपासनाका जो जिज्ञासु आया है तिसकूं भोजनस्थानी उपासना दे. किस प्रकार कि, धैर्यरूपी चूल्हा और नवधा भक्ति रूपी काष्ठ और संयमरूपी अग्नि इस सामग्री करके इसकों भोजन कर दे. तब सो क्षमारूपी स्त्री इन सामग्रियों करके उपासनारूपी भोजन बनावती थी. उस

कालमें तिसके यशरूपी पुत्रनें वस्तु स्थानीं कोई पदार्थ (ईश्वरसे भिन्न स्वर्गादिक) क्षमारूपी माताके पास मांगा. तब उसनें समझावनें स्थानीं यह कहा कि, यशरूपी भक्त हो करके जो किसी पदार्थकी वांछा करेगा तो अपयशरूप हो जायगा. यातें स्वर्गादिक पदार्थ नहीं दिये. जब वह नहीं समझा तब धीरज-रूपी चूल्हे और संयमरूपी अग्निमें इसकों देकर जला दिया. तब वह उपासनाके जिज्ञासुरूपी ब्राह्मणनें देख करके कहाकि, तुमनें यशरूपी भक्तपुत्रका अभाव कर दिया. तुमसे भोजन स्थानी उपदेश लेना उचित नहीं है.तब उपासनाके आचार्यनें कहा तू अभिप्रायकों नहीं समझा है. यशरूपी जो भक्तपुत्र है, तिसका अभाव नहीं होता है. अब संजीवन होवे है.

प्रश्नः—इसविषे प्रमाण क्या है ?

उत्तरः—इसविषे प्रमाण गीतामें कहा है ॥ **कौंतेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति** ॥ इसका अर्थ, हे कौंतेय! तूं निश्चयकरके प्रतिज्ञा कर कि, मेरा

भक्त नष्ट नहीं होता है. भगवानके यह वचन हमनें सत्यही माने हैं. ईश्वरसे भिन्न फल मांगा था, यातें इसकों दंड दिया. तब जीवनेस्थानीं यथार्थ उपासनाके निर्णयवाली संजीवनी विद्याकरके यशरूपी पुत्रकों खडा किया. तब वह उपासनाका जिज्ञासु प्रसन्न हुवा. और प्रसन्न होकरके उपासनांके साधनरूपी भोजनकों पायकरके उस यथार्थ निर्णयकी विद्याकी वांच्छा करी कि, उपासनांके आचार्यकों प्रार्थना करी कि, यह विद्या मुझकों दीजिये तब वह विद्या इसकों दिनीं. जब इससे यथार्थ उपासनांके निर्णयकी विद्या पाई तब दग्ध होने रूपी लोप हुई. पराशांतिस्त्रीके जिवावनेंरूपी उदयकी इच्छा करता भया, अर्थात् मोक्षकी वांछा करी. और जहां पराशांति विद्यारूपी कन्या लय होगयी थी, तहां इस यथार्थ निर्णयरूपी विद्याका उच्चार किया सो वह पराशांति विद्या जीवनेंस्थानीं प्रकट हुई. और उसके साथ कर्मकांडरूपी जिज्ञासु जले हुए पुरुषस्थानीं प्रकट हुआ. अब इन तीनों जिज्ञासुओंमें पराशांति

विद्याका अधिकार जले हुए पुरुषस्थानीं कर्मेष्टिकों है? अथवा तीर्थ यात्रा करनेवाले पुरुषस्थानी उपासनाके जिज्ञासुको है? अथवा कुटि बांधकरके बैठनेवाले पुरुष स्थानीं ज्ञानके मुमुक्षुकों है? कारण कि, संबंध तीनोंके संग है. परम सुखकों तीनोंही चाहते हैं. सो इस कन्याके पितास्थानी ज्ञानकांडने उपासनाके जिज्ञासु और कर्मकांडके जिज्ञासुकों कहा कि, तुमको उपासनारूपी स्त्री और कर्मकांडरूपी पुत्रनें संबंध स्थानी उपदेश देना किया था, सो तुमकों कर्म और उपासनाकाही अधिकार है, ब्रह्मविद्याका अधिकार नहीं है.

इसपर **दृष्टांत** कहते हैं. एक माताके तीन पुत्र हैं. एक रोगी है, एक मांदगीतें उठा है और एक अच्छा है. उन तीनोंके अर्थ मातानें दालका पानीं, खिचडी और चूरमां ऐसा तीन प्रकारका भोजन बनाया. जब तीनों पुत्र भोजनके अर्थ आये तब बडा भाई जो शरीरसे अच्छा था. तिसनें भोजनका विचार किया कि, यह दालका पानी तो इस मांदेके अर्थ है. यह खीचडी

मांदगीसे उठे हुएके अर्थ है. और चूरमा मूळ शरीरसे अच्छेके अर्थ है यह तीनों भोजन तीनोंको उचित हैं. और एक एकका विपरीत और बाध करनेवालेही है.

तैसेही **दार्ष्टांतिक** कहते हैं. श्रुतिरूपी माताके कर्मेष्टि, उपासिक और ज्ञानी तीन पुत्र हैं. तिन्होंके अर्थ कर्मरूपी दालका पानी, उपासनारूपी खिचडी और ज्ञानरूपी चूरमा किया. बडे पुत्र स्थानीं ज्ञानीनें विचार करके तीनोंके विभाग करके दिया. यह वेदका अविरोध अर्थ है. तब उस कुटी बांधकर बैठनेवाले स्थानी ज्ञानके मुमुक्षु पुरुषनें तिस पराशांतिविद्यारूपी कन्याकी वांछा करी. तब ज्ञानकांडरूपी पितानें कहाकि,तूं तो अधिकारी है तुझकों विवाह देंगे. तब वेदपाठी ब्राह्मणरूपी ज्ञानके आचार्यसे विवाह करवानेरूपी उपदेश किया. और कन्या देनेस्थानीं पराशांतिरूपी विद्या दिनी. और पुत्र होनेंरूपी ज्ञान हुवा.और घर वसानेरूपी उसकों अपने स्वरूपकी प्राप्ति हुई. ऐसे वैराग्यादिक साधनोंकरके पुरुष शीघ्रही मोक्षकों प्राप्त होता है.

प्रश्नः—इसविषे प्रमाण कहो.

उत्तरः--इसविषे श्रीभगवानका वचन प्रमाण है. ॥ श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेंद्रियः॥ ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधिगच्छति ॥ १ ॥ इसका अर्थ श्रद्धावान् पुरुष श्रद्धा होनेसें भी कोई एक मंदबुद्धिमान् है. तिसपर कहते हैं 'तत्परः' गुरुकी उपासनादिकोंकरके युक्त ज्ञानकी प्राप्तिके उपायमें श्रद्धावान् और तत्परभी हैं परंतु इंद्रियां नहीं जीतीं है. इसपर कहते हैं 'संयतेंद्रियः' भलेप्रकारकरके विषयोंसे निवृत्त भई हैं इंद्रियां जिसकी ऐसा हुआ श्रद्धावान्, तत्पर और इंद्रियांका जीतनेवाला सो अवश्य ज्ञानकों प्राप्त होता है. और ज्ञानकों प्राप्त होकरके शीघ्र मोक्षकों प्राप्त होता है.

प्रश्नः—आत्मा तो पुत्रकोंभी कहते हैं. इसविषे श्रुतियां और युक्ति प्रमाण है सोई दिखावते हैं. ॥आत्मा वै जायते पुत्रः॥इति श्रुतिः।इसका अर्थ,निश्चय करके

आत्मा पुत्र होता भया-इसकों आदि लेकर श्रुतियां कहते हैं. जिस प्रकार अपने विषे प्रेम है तिसही प्रकार पुत्रमेंभी प्रेमके देखनेसे युक्तिभी कहतें हैं-पुत्रके नष्ट पुष्ट होनेसे मैंभी नष्ट पुष्ट हूं इत्यादिक अनुभवसे अति प्राकृत जन पुत्रकों आत्मा कहते हैं.

उत्तरः—रे वादी! सुन. चार्वाक तेरे मतकों खंडन करे हैं ॥**सवा एष पुरुषोऽन्नरसमयः** ॥ इत्यादि श्रुतिः। इसका अर्थ, सोई यह पुरुष अन्नरसमय है, इसकों आदिलेकें श्रुतियां कहतीं हैं, जलते हुवे घरसे अपने पुत्रकों त्याग करके अपने भाग जानेसे, स्थूल हूं दुबला हूं इत्यादिक अनुभवसें स्थूल शरीरकों आत्मा कहे हैं.

प्रश्नः—तो स्थूल शरीरही आत्मा है?

उत्तरः—और चार्वाक कहे हैं ॥ **ते ह प्राणाः प्रजापतिं समेत्य ब्रूयुः** ॥ इत्यादि श्रुतेः । इसका अर्थ. ह (स्फुट से) प्राणाः ते (इंद्रियां) प्रजापतिं समेत्य (ब्रह्मकों भले प्रकार प्राप्त होकरके) ब्रूयुः

(कहते भये,) इसकों आदि लेकरके श्रुतियां कहते हैं. इंद्रियोंका अभाव होनेसे, शरीरके चलनेंके अभावसे, मैं काणा हूं, मैं बहिरा हूं, इत्यादिक अनुभवसे इंद्रियां-को आत्मा कहे हैं.

प्रश्नः—तो इंद्रियांही आत्मा है?

उत्तरः—और चार्वाक कहे हैं ॥**अन्योंतरआत्मा प्राणमयः** ॥ इत्यादि श्रुतिः । इसका अर्थ, और अंतर आत्मा प्राणमय है. इसकों आदिलेकर श्रुतियां कहते हैं. प्राणके अभाव होनेसे, इंद्रियादिकोंके चलनेके अयोग्यते, मैं भूखा हूं, मैं प्यासा हूं, इत्यादिक अनुभवसे प्राणकों आत्मा कहे हैं.

प्रश्नः—तो प्राणही आत्मा है?

उत्तरः—और चार्वाक् तिस प्राणकों खंडन करे हैं ॥**अन्योंतर आत्मा मनोमयः**॥इत्यादि श्रुतिः। इसका अर्थ, और अंतर आत्मा मनोमय है. इसकों आदि लेकरके श्रुतियां कहते हैं. मनके अभाव होनेसे

प्राणादिकोंके अभावसे, मैं संकल्पवान् हूं,मैं विकल्पवान् हूं इत्यादिक अनुभवसे मनको आत्मा कहे हैं.

प्रश्नः--तो मनही आत्मा है?

उत्तरः--बौद्ध मनकोंभी खंडन करे हैं ॥**अन्योंतर आत्मा विज्ञानमयः** ॥ इत्यादि श्रुतिःइसका अर्थ, और अंतरआत्मा विज्ञानमय है. इसकों आदिलेकर श्रुतियां कहते हैं. कर्ताका अभाव होनेसे कर्णकी प्राप्तिके अभावसे मैं कर्ता हूं, मैं भोक्ता हूं, इत्यादिक अनुभवसे बुद्धिकों आत्मा कहे हैं इससे मनकों करणत्व और बुद्धिकों कर्तृत्व सिद्ध किया.

प्रश्नः--तो बुद्धि आत्मा है?

उत्तरः--मीमांसक आचार्य प्रभाकर और नैयायिक दोनों बुद्धिकों खंडन करे हैं. ॥**अन्योंतर आत्मा-नंदमयः**॥इत्यादिश्रुतिः। इसका अर्थ, और अंतरात्मा आनंदमय है. इसकों आदिलेकर श्रुतियां कहते हैं. बुध्ध्यादिकोंके अज्ञानमें लीन देखनेसे मैं अज्ञ हूं, मैं अज्ञानी हूं, इत्यादिक अनुभवसे अज्ञानकों आत्मा कहते हैं.

प्रश्नः--तो अज्ञान ही आत्मा है?

उत्तरः--मीमांसाका दूसरा आचार्य भट्ट अज्ञानकों खंडन करे है. ॥ **प्रज्ञान घन एव आनंदमयः॥** इत्यादिश्रुतिः । इसका अर्थ यह है कि, प्रज्ञान घन आनंदमय है. इसकों आदिलेकर श्रुतियां कहते हैं, सुषुप्तिमें प्रकाश और अप्रकाश दोनोंके अनुभवसे मैं अज्ञ हूं मैं आपकों नहीं जानता इत्यादिक अनुभवसे अज्ञानोपहित चैतन्यकों आत्मा कहे हैं.

प्रश्नः--अज्ञानोपहित चैतन्यही आत्मा है?

उत्तरः—दूसरा बौद्ध तिस अज्ञानोपहित चैतन्यकों खंडन करे हैं ॥**असदेवेदमग्र आसीत्**॥इत्यादि श्रुतिः । इसका अर्थ. इस प्रपंचसे पूर्व यह असत ही था. इत्यादिक श्रुतियां कहते हैं. सुषुप्तिमें संपूर्णके अभावसे मैं सुषुप्तिमें नहीं था इसप्रकार उठे हुएका जो स्वभाव तिसके विचारका जो विषय तिसके अनुभवसे शून्यकों आत्मा कहते हैं.

प्रश्नः—तो शून्यही आत्मा है?

उत्तरः—शून्यकों तो तूंही जानता है. क्यों कि अभावका सिद्ध करनेवाला भावरूप तूं है.

प्रश्नः—हे भगवन्! तो मैं कौंन हूं? सो श्रुति, हेतु, युक्ति और अनुभवसें सिद्ध करके कहो.

उत्तरः—श्रुति कहते हैं ॥ **प्रत्यगस्थूलोऽचक्षुरप्राणोऽमनोऽकर्ताऽचैतन्य चिन्मात्रं सत्** ॥ इत्यादि श्रुतिः। इसका अर्थ कहते हैं, साक्षी आत्मा न स्थूल है, न चक्षु है, न प्राण है, न मन है, न कर्त्ता है, न अचैतन्य है. और चैतन्यमात्र सत्‌रूप है इसकूं आदि लेकर श्रुतियां कहते हैं. इत्यादिक बलवान् श्रुतियोंके विरोधसे पुत्रकों आदि लेकर शून्यपर्यंत जड वर्गकों चैतन्यसे भासने करके आकाशके बुद्ध्यादिककी नाई अनित्यतासे ॥ **अहंब्रह्मेति विद्वदनुभवप्राबल्याच्च** ॥ इसका अर्थ कहते है, च (पुनः) '**मैं ब्रह्म हूं**' इसप्रकार ज्ञानियोंके बलवान् अनुभवसे जाननेकों योग्य है.

इति वेदके सारार्थके निर्णयकी अष्टात्रिंशत्तमी युक्ति संपूर्ण हुई ॥ ३८ ॥

ॐ

नमः सच्चिदानंदाय।

शीघ्र और चिरकालमें ज्ञानकी युक्ति।

अब शीघ्र और चिरकालमें ज्ञान होनेके निर्णयकी एकोनचालीसवी युक्ति कहता हूं—

वादी पूंछता है, हे भगवन्! किसी पुरुषकों ज्ञान शीघ्र होता है और किसीकों चिरकालमें होता है, इसका क्या कारण है?

सिद्धांती कहता हैं कोई साधनवाला पुरुष श्रवणादिक करता हुवा शरीरकों त्याग करके अन्य शरीरकों प्राप्त होता है. क्योंकि, पूर्व जन्ममें साक्षात्कार नहीं हुवा है. इससें ऐसें पुरुषकों शीघ्रही ज्ञान होता है.और साधनोंकी न्यूनता है जिसकों सो चिरकालमें साधन संपन्न हो करके मोक्षकों प्राप्त होता है.

प्रश्नः--शरीर छोडे पीछे तो कुछ नेम नहीं है कि, उत्तम शरीरकोंही प्राप्त होवे है? क्योंकि, संचित कर्मों-विषे अनेक योनियोंके जन्म होने रहे हैं.

उत्तरः--ऐसा पुरुष उत्तम देहकों प्राप्त होकरके शीघ्रही ज्ञानकों प्राप्त होवेगा.

प्रश्नः—इसविषे प्रमाण कहो.

उत्तरः--इसविषे प्रमाण गीतामें कहा है ॥ **अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ॥ एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥ १ ॥** इसका अर्थ चिरकालपर्यंत साधन किया है जिसने सो पुरुष योगियोंके कुलमें अर्थात् योगनिष्ठावालोंके कुलमें अथवा ज्ञानियोंके कुलमें जन्मकों प्राप्त होते हैं. अथवा सिद्धिके भावकों प्राप्त होवे हैं. ऐसे जन्मकी स्तुति करते हैं. ऐसा जो जन्म है सो जगतमें मोक्षके हेतुसे दुर्लभतर है.

प्रश्नः--गुरुका ज्ञान तो एकही है. तिसविषे शीघ्रता और चिरकालता कैसी ?

उत्तरः--शिष्यके साधनोंकी तारतम्यता है, गुरुकी कृपादृष्टि तो समान ही है.

प्रश्नः--शीघ्र ज्ञान जिसप्रकार होवे, सोई प्रकार युक्तिपूर्वक वर्णन करो.

उतरः--जैसे तोपमें स्थित गोला और बारूद करके संयुक्त और प्यालेमें भरी है रंजक जिसके, तिसकों कोई पुरुष छोडनेवाला बलता हुवा तोडा लगावे तब तत्कालही गोला लाल होकरके भिन्न होता हैं. यह युक्तिरूप **दृष्टांत** कहा. अब **दार्ष्टांतिक** कहते हैं. तोपरूपी संघातमें स्थित जीवरूपी गोला बारूदरूपी साधनों करके संयुक्त प्यालेरूपी शुद्ध अंतःकरणकी वृत्तिविषे रंजकरूपी आतुरता है जिसके, तिसकों कोई तोपके छोडनेवाले रूपी ज्ञानी पुरुषके महावाक्यरूपी हाथमें अर्थरूपी तोडा ज्ञानरूपी अग्निकरके संयुक्त उपदेशरूपी संयोगके होनेसे गोलारूपी जीव लाल होनें रूपी परमानंदकों प्राप्त हुवा;अर्थात् तत्काल ही तोपरूपी संघातसे भिन्न होगया.

प्रश्नः—हे भगवन्! ज्ञान होनेकी रीत कहो.

उत्तरः—संपूर्ण साधनोंकरके युक्त ऐसा मुमुक्षु हाथमें काष्ठादिक लेकरके,और सन्मुख बैठके प्रार्थना करे कि, हे भगवन्! संसाररूपी अग्निकरके अति संतप्त हूं. मेरे इस दुःखको निवारण करो. ऐसे वचनकों श्रवण करके गुरु उपदेश करता है कि, हे शिष्य! तूं जिस संसारसे डरा, सो संसार जितना तूने जाना है उतनाही नहीं हैं. नीचेके सात लोक और उपरके सात लोक इन चौदह लोकनमें चौरासी लाख योनियां अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज, जरायुज, तैजस (अग्निसे उत्पत्ति है जिनकी), आप्य (जलसे उत्पत्ति है जिनकी), वायव्य (वायुसे उत्पत्ति है जिनकी) और मानस (मनसे उत्पत्ति है जिनकी) ऐसी अष्ट प्रकारकी चौरासी लाख योनियां हैं जिसमें, और ब्रह्मा विष्णु शिव आदिक संपूर्ण देवतादिकोंकरके संयुक्त ब्रह्माण्ड है. ऐसा बडा जगत् है, सो तैनें जानां?

तहा शिष्य कहते हैं कि, हे भगवन्! मैंनें यह जगत् भले प्रकार जाना.

तहां गुरु कहते हैं कि, हे शिष्य! तो देह, इंद्रियां, प्राण, मन इत्यादिक संपूर्णका जाननेवाला तूं इनसे भिन्न है. तूं जाननें मात्र कहिये ज्ञान मात्रही है.

प्रश्नः--हे भगवन्! मनआदिक संपूर्णकोंमें भलेप्रकार जानूं हूं, परंतु इसविषे प्रमाण कहो.

उत्तरः--गुरु श्रुति प्रमाण कहते हैं ॥ **को देवो यो मनःसाक्षी मनो मे दृश्यते मया ॥ तर्हि देव त्वमेवासि एको देव इतिश्रुतिः** ॥ इसका अर्थ कहते हैं.

शिष्यः--को देवः(देव कौन है?)

गुरुः--यो मनःसाक्षी (जो मनका साक्षी) सोई देव है.

शिष्यः--मे मनःमया दृश्यते (मेरा मन मैंने देखा है)

गुरुः--तर्हि देव त्वं एव असि (तो देव तूं ही है),

शिष्यः--इसविषे प्रमाण कहो.

गुरुः--एको देव इति श्रुतिः (एकही देव कहिये स्वयं प्रकाश है इस प्रकार श्रुति कहती है.) और साधनोंकी

अपेक्षा रहित करके स्वयं प्रकाशमान हुवा अपनेमें आरोपित संपूर्ण पदार्थोंकों प्रकाशक चैतन्य तूं है.

प्रश्नः--हे भगवन्! तो चैतन्यमात्रही मैं हूं और कुछ नहीं?

उत्तरः—तूं चैतन्य सतरूपही है. किसी करकेभी नहीं नाश होनेसे तीनोंकालमें तूं विद्यमान है इससे सत्यरूप है.

प्रश्नः--अबाध्यताविषे प्रमाण कहो.

उत्तरः--अबाध्यताविषे गितामें प्रमाण है ॥ **नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ॥ न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुतः॥१॥**

इसका अर्थ कहते हैं. इस आत्माकों शस्त्र नहीं छेदन करसकते हैं, इस आत्माको अग्नि नहीं जलाय सकता है, जल नहीं भिजोय सकते हैं, पवन नहीं सुकाय सकता है, इस देहके पूर्व और पश्चात् और देहके विद्यमान होनेसेही तूं चित् सत् आनंदरूपही है.

प्रश्नः--तो मैं निश्चयकरके सत्‌चित्‌रूप हूं, परंतु आनंद किसप्रकार हूं?

उत्तरः--परम प्रेमके स्थानसे आत्माही परमानंदरूप है. कारण कि, जिस जिस वस्तुपर तूं आनंद चढावता हैं तहां तहां तूंही आनंदरूप भान होवै है.

प्रश्नः--इसविषे प्रमाण कहो.

उत्तरः—इसविषे स्मृति प्रमाण है॥ **परप्रेमास्पदत्वेन परमानंदरूपता ॥ सुखवृद्धिः प्रीतिवृद्धौ सार्वभौमादिषु श्रुता ॥ १ ॥** इसका अर्थ यह है कि, परप्रेमके स्थानकरके परमानंदरूपता है. सार्वभौमादिषु कहिये चक्रवर्तिकों आदिलेकर हिरण्यगर्भ पर्यंत जिन जिन पदोंमें प्रीति बढे तिन तिन पदोंमें सुखकी वृद्धि है. इसप्रकार तैत्तिरीय और बृहदारण्यकी श्रुतियोंका अभिमत है. श्रुतिभी कहते हैं॥ **सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म ॥** इसका अर्थ, सत्य ज्ञान अनंत ब्रह्म है. यह तेरे सत्‌लक्षणविषे प्रमाण है ॥ **अत्रायं**

पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति । यस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ इति श्रुतिः । इसका अर्थ इस स्वप्नावस्थामें यह पुरुष स्वयं ज्योति है, कि स्वयं प्रकाश है. जिसके भास करके यह संपूर्ण प्रपंच भान होता है. इसकों आदिलेकर श्रुतियां कहते हैं. यह तेरे चित् लक्षणविषे प्रमाण है ॥**आनंदो ब्रह्म**॥ इसका अर्थ, आनंद ब्रह्म है. यह श्रुति आनंद लक्षणविषे प्रमाण है. तिससे तूं सत् चित् आनंदरूपही है. जैसे इन देहादिकोंसे तूं भिन्न है, तैसेही संपूर्ण जगतसें भिन्न तूं साक्षीमात्र एकही सर्वव्यापी है.

प्रश्नः—तो द्वैतापत्ति रही.

उत्तरः—नामरूपात्मक संपूर्ण जगतकों अस्ति भाति प्रियतामात्र करके आच्छादन कर ले. तिसपर भाष्यकारकी एक युक्ति कहते हैं.जैसे चंदनकी वा अगरकी एक लकडी जलके संयोगसे दुर्गंधित हुई, तिसके रगडनेसे निकसी जो सुगंध तिस सुगंधकरके संपूर्ण आच्छादित होगई और चंदन अथवा अगरही मात्र हुई

तैसेंही कर्तृत्व भोक्तृत्वादिकों करके मलिन हुवा जो जीव सो रगडनें रूपी श्रवणादिकों करके उत्पन्न हुई जो सच्चिदानंदात्मक पारमार्थिक गंध तिसकरके आपकों सच्चिदानंद मात्रही जानकरके नामरूपात्मक संपूर्ण देहादिक जगतकों आच्छादन कर ले कि, मैं सच्चिदानंदमात्रही हूं.

प्रश्नः—इसविषे श्रुति प्रमाण कहो.

उत्तरः—॥ **वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्** ॥ इति श्रुतिः ॥ इसका अर्थ कहते हैं कि, विकारमात्र जो नामधेय है सो संपूर्ण वाणी करके कहनेमात्र है. मृत्तिका ही सत्य है. इसकों आदिलेकर श्रुतियां कहते हैं.यह युक्तिरूप श्रुति कही, अब और प्रकारभी शीघ्र ज्ञान होनेकी रीत कहते हैं. एक राजा, गृहस्थ धर्मकों त्याग करके और अति आतुर होकरके कोई ऋषि गंगाके निकट बैठे थे, तिनकों शरण गया. और विनती करी कि, हे भगवन्! मैं अति दुःखित हूं, मुझकों ज्ञानके उपदेश करके शी-

ग्रही परम शांति करो अर्थात् परम सुखी करो. तब ऋषि बोले कि, हे राजन्! मुझकों उपदेश करनेका अवकाश नहीं है. तूं गंगाजीके निकट जाकरके प्रार्थना करे कि, हे भगवन्! कोई ज्ञानी पुरुष होय तो मुझकों उपदेश करो. सो उस गंगाजीमें एक मत्स्य रहता है सो तुझें उपदेश करेगा. इसवार्ताकों श्रवण करके राजा गंगाजीके निकट गया. पीछेसे ऋषी मत्स्यका रूप धारण करके जलमें प्रवेश करगया. जब राजा बोला कि, हे भगवन्! कोई ज्ञानी पुरुष होवै तो मुझकों ब्रह्मज्ञानकरके संसारदुःखसे निवृत्त करो. तब मत्स्यरूप ऋषि जलसे भिन्न उदय होकरके बोले कि, हे राजन्! मैं तुझकों उपदेश करूंगा. परंतु मेरा कुछ कार्य है सो तूं प्रथम कर दे. क्यों कि, मैं अतितृषावान् हूं. मुझकों पहिले जल बताव. तब राजा बोला कि, हे भगवन्! जल तो तुम्हारे नीचे, उपर, पीछे, आगे, दाहनें और वामभागमें सब जल है. और हे भगवन्! तुमही जलरूप हो; ऐसे होकर तुम जलकी वांछा करो

हो यह बडा आश्चर्य है. तब ऋषि बोले कि, हे राजन्! तैंने यह तो सत्य कहा, परंतु मेरे कंठमें छिद्र है. मैं जल किस प्रकार पीऊं. तब राजा बोला कि हे भगवन्! तुम मुख वायकरके उपरको पलटा खाय जावो. तब मत्स्यरूप ऋषि बोले कि, हे राजा! तूं जैसा हमकों उपदेश करता है, तैसा तूं क्यों नहीं समझता. जलरूप ब्रह्म तेरे नीचे, उपर, पीछे, आगे, दाहिनें, वामभागमें और यह संपूर्ण ब्रह्मही है, और तूंही ब्रह्मस्वरूपही है. ऐसे तुम ब्रह्मरूप होकर ब्रह्मकी वांछा करते हो यह बडे आश्चर्यकी बात है. अब तूं जलरूप ब्रह्ममें तत्पद और त्वंपद दोनों होठ वाय करके-कि-परोक्षअपरोक्षत्वादिक और कर्तृत्वभोक्तृत्वादिकोंसे उपरकों पलटा लेना कि, असिपद शुद्ध ब्रह्मरूप मैंही हूं; इस वाक्यकों समझकरके और कंठके छिद्ररूपी असंभावनादिकोंको रोक करके, आपकों ब्रह्ममात्रही जान. तब राजा बोला कि, हे भगवन्! मैं कृतकृत्य हूं, मैं परमानंदस्वरूप हूं, ऐसा कह करके और नमस्कार करके वनांतरकों चला गया.

प्रश्नः—हे भगवन्! इसविषे श्रुति प्रमाण कहो.

उत्तरः—इसविषे श्रुति प्रमाण कहते हैं ॥ **अथात आत्मा देश एवात्मैवाऽधस्तादात्मोपरिष्टा- दात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदं सर्वम्** ॥ इतिश्रुतिः। इसका अर्थ कहते हैं. इसके पश्चात् इसकारणसे आत्माकूं ही दिखावते हैं. आत्माही नीचे है, आत्मा ही ऊपरतें है, आत्माही पीछेतें है, आत्माही आगेतें है, आत्माही दाहनेतें है, आत्माही वामेतें हैं, यह संपूर्ण आत्माही है. इसकों आदि लेकर श्रुतियां कहते हैं.

प्रश्नः—हे भगवन्! किसीकों ज्ञान चिरकालमें होता है, तिसका निर्णय करो.

उत्तरः—जिसको शीघ्र ज्ञान होता है, तिसकों उत्तम मुमुक्षु कहते हैं. और जिसको चिरकालमें ज्ञान होता है, तिस विषे दो भेद हैं. एक मध्यम मुमुक्षु और एक मंद मुमुक्षु. जो साधनों करके संपन्न है परंतु जि- सको जन्मान्तरोंमें श्रवणादिक नहीं भये सो मध्यम

मुमुक्षु है, तिसको वारंवार श्रवणादिक कराना योग्य है.

प्रश्नः—श्रवण-मनन-निदिध्यासन एक वेर भये तब ज्ञान होता है. वारंवारका नेम कहां है और जो नेम है तो प्रमाण कहो.

उत्तरः—इसविषे व्यासजीका सूत्र प्रमाण है सोई कहते हैं ॥ **आवृत्तिरसकृदुपदेशात्** ॥ इसका अर्थ कहते हैं, श्रवणादिकोंकी आवृत्ति करनेको योग्य है. काहेतें वारंवारके उपदेशसें. और राजयोगके आठों अंगभी चाहिये तब इसकों ज्ञान होवेगा.

प्रश्नः—इसविषे प्रमाण कहो.

उत्तरः—इसविषे स्मृति प्रमाण है ॥ **रागामुक्तं लोहयुतं हेम यथाग्नौ योगाष्टांगैरूज्ज्वलित ज्ञानमयाग्नौ॥दग्ध्वात्मानं ज्ञं परिशिष्टं च विद्युर्यं तं संसारध्वांतविनाशं हरिमीडे** ॥ इसका अर्थ. रागामुक्तं (रागादिकोंकरके मलिन किये हुए) आत्मानं (आत्माकों) दग्ध्वा (तपाय करके अर्थात् शोधन करके) परिशिष्टं ज्ञं (शेष रहा जो चेतन) यं

विदुः (जिसको साक्षात्कार करते हैं) तं हरिं अहं ईडे (तिस हरिकी मैं स्तुति करता हूं.) सो हरी कैसा है. संसारध्वांतविनाशं (संसारका कारण जो अज्ञान तिसका नाश करनेवाला) है किसीमें तपायकरके? इस आकांक्षा विषे कहते हैं. योगाष्टांगैरुज्वलितज्ञानमयाग्नौ (योगकहिये प्रत्यक् चैतन्य और ब्रह्मचैतन्य दोनोंकी एकता तिसकी प्राप्तिमें साधनभूत, निर्गुणके विषय करनेवाले आठों अंगों करके, निर्गुण योगके आठों अंग, योग विशेषके आत्मयोग ग्रंथमें कहे हैं. सोई दिखावते हैं. देह और चक्षु आदिक इंद्रियों विषे जो विरक्तता सो **यम** कहा जाता है. इस योगविषे नियम दिखावते हैं. अर्थात् आत्मतत्त्वविषे जो प्रीति सो **नियम** कहा जाता है. बाहरके विषयों विषे उदासीनताकों **आसन** कहते हैं. और चित्तादिक संपूर्ण भावोंविषे ब्रह्मकरके भाव करनेसे संपूर्ण वृत्तियोंका जो निरोध तिसकों **प्राणायाम** कहते हैं. अपनी बुद्धिकी विषयोंसे जो विमुखता सो **प्रत्याहार** कहा जाता है.

आत्मानिष्ठाकों **धारणा** कहते हैं. मै ब्रह्म हूं इसवृत्ति-को **ध्यान** कहते हैं. दृष्टांतसे कुछ भिन्न नहीं, अज्ञान रहित जो आत्मा मात्रका स्फुरण होना सो **समाधि** कहा जाता है. तिन काष्ठस्थानीं आठों अंगोंकरके बलता हुवा जो ज्ञानरूप अग्नि तिसविषे) और साधनों विषे है अंतर जिसके, और नहीं परिपक्क हुआ है मन जिसका तिस मंदमुमुक्षुके प्रति कहे हैं. काष्ठस्थानीं **पतंजली** नें वर्णन किये हठ योगके प्रसिद्धही यम नियमादिक आठों अंगोंकरके बलता हुवा जो ज्ञानमय अग्नि तिसविषे **दृष्टांत** कहते हैं. लोह युतं हेम यथाग्नौ (लोह करके मिले हुए सुवर्णकों अग्निमें तपायकरके लोहेकों त्याग करके सुवर्णकों जैसे ग्रहण करते हैं) तिसकेनाईं चिरकालमें और अति चिरकालमें मध्यम और मंद मुमुक्षु दोनों आत्मपदकों प्राप्त होते हैं.

यह शीघ्र और चिरकालमें ज्ञान होनेके निर्णयकी एकोनचत्वारिंशत्तमी युक्ति संपूर्ण हुई ॥ ३९ ॥

इति श्रीसाधुनिश्चलदास-
कृत युक्तिप्रकाश
संपूर्ण.

महाकविश्री कालिदासग्रथितग्रंथमालाका

द्वितीयरत्न.

कुमारसंभव महाकाव्य. टीकात्रयसंवलित.

इस कुमारसंभव काव्यके अष्टमसर्गपर्यंत **मल्लिनाथकृतसंजीविनी**, आजतलक किसीनेभी छपी नहीं है ऐसी अष्टम सर्गपर्यंत **चारित्रवर्धन**कृत **शिशुहितैषिणी** टीका और सप्तमसर्गसे ग्रंथसमाप्ति पर्यंत **सीतारामकृत संजीविनी** टीका. इसप्रकार टीकात्रयसंवलित यह काव्य विद्यार्थि लोकोंके अतीव उपयोगार्थ छापके प्रसिद्ध किया है. और इसका मूल्य रु० १। डा० म० ≈ रक्खा है.

गीता पंचरत्नी मूल्य ७ आ० डा० म० १॥ आ०
